ओ३म्

वेदान्त प्रश्नोत्तरी ।

प्रकाशक:—

श्री स्वामी शान्ता नन्द जी महाराज

शिष्येण श्री स्वामी १०८ स्वामी अच्युता नन्द जी उपनाम ढभे
नारायण गुरुद्वारा विस्वामित्र पुरी वेसवां धर्नीधर
जिला अलीगढ़ ।

शंशोधक :—

पं० राधा वल्लव जी सहरोई निवासी ।

व्ययकर्ता :—

लाला राम सरूप जी अम्बाला छावनी ।

पुस्तक मिलने का पता :—

श्रीयुत पं० सोनपाल जी मौज़ा फफौन्दा पोस्ट लोधा, (अलीगढ़)

प्रथमावृति १००० कापी | मूल्य केवल प्रेम विचार

सम्वत १९९३

Printed by L. Kanshi Nath Jain at the Banarsi Dass Electric Press, Ambala

राम पंचायत महिमा

दोहा

गुरु वसिष्ट श्रीराम के, कीया कुल उद्धार।
रानी राजा सहित सब, कीया सब को पार ॥१॥
राम रमें सब जगत में, जाने बिरला कोय।
जो जाने जिस ऊपरे, कृपा राम की होय ॥२॥
राम हमारे इष्ट हैं, राम ग़रीब निवाज।
पार ब्रह्म परमात्मा, सब की राखें लाज ॥३॥
धनि सीता के भाग्य को जिन पति पाये राम।
तीनि लोक विख्यात हो, अंत बसी हरि धाम ॥४॥
भ्राता लक्ष्मण राम के, जो शेषा अवतार।
शरण परे हम आप की, कर दीजे भवपार ।५॥
अनुपम सेवा आपकी, धन्य राम के भ्रात।
वर्ष चतुर्दश वन रहे, कही सीया से मात ॥६॥
भरत भाव पूरण विमल, भ्राता राम सुजान।
राज छोड़ मिलने गये, धर्म ध्वजा दी तान ।७।
मानी आज्ञा भ्रात की, वन से किया पयान।
ध्यान किया तजि अवध को, देवन हने निशान ॥८॥
शत्रूतन स्वामी मेरे, दीन शरण भये आइ।
शत्रु नाशक आप है, दीजै पार लगाय ॥९॥
हनूमान सेवा करी, तन मन धन से जान।
सांची भक्ति भाव से, शिक्षा लीनी मानि ॥१०॥

राम सभा दरशन किया, जिन पुरुषों ने आइ ।
तिहि प्रभाव से सहज में, लिया अभय पद पाइ ॥११॥
श्री राम महिमा अधिक, दर्शन से अघ जाहिं ।
सोनपाल कविता करी, गांव ककोला माहिं ॥१२॥

श्री कृष्ण योगेश्वर महिमा

दोहा

कृष्ण जन्म मथुरा भयो, श्री वसुदेव सुधाम ।
धनि धनि यसुदा मात को, तिन कीये पूरण काम ॥१॥
मात पिता कूं बर दिया, बंधन काटूं आन ।
क्षीर पान तब ही करूं, लेउ कंस की जान ॥२॥
गोकुल जाकर उद्धरे, नन्द देव की माय ।
गाढ़ा सुर कूं तहां हना, संशय मेंटी जाय ॥३॥
आई मारण पूतना, विप लगाय कुच आयु ।
दुग्ध पान के करन ही, स्वर्ग गई विनु जायु ॥४॥
वाल रूप श्री कृष्ण जू, अद्भुत कीये खेल ।
काली कूं दह में हना, निर विषकर के पेल ॥५॥
यमुना जल निर्मल कियो, सुखी भये वृजराज ।
वाल सखा आनंद मिलि, सर्व किये प्रभु काज ॥६॥
वल जांचन चोरी करी, वच्छ लै गयो धाम ।
मान हनो विधि को तुरत, जिन छलकीयो काम ॥७॥
बाल वत्स तद्रूप ही, किये योग वल आन ।
तब विधि को अचरज भयो, कृष्ण दड़े बलवान ॥८॥

आप कृपा करि दीजिये, भक्ति मुक्ति को दान ।
बड़े दयालु कृष्ण जू, तिन कूं अनुपम जान ॥९॥
गोपी जग सें तर गईं, लघुमति स्त्री जात ।
प्रेमाभक्ति से हरे, चीर नगन भईं गात ॥१०॥
चन्दन लेपन से भये, कुबरी पर परशंद ।
जन्म जन्म के कटि गये, द्वन्द शरीरी फंद ॥११॥
योगिराज श्री कृष्ण जू, महिमा अपरम्पार ।
मन वाणी का विषय नहिं, कैसे पाऊं पार ॥१२॥
अर्जुन आज्ञा में रहे, रथ हांक्यो संग्राम ।
जीत उसी की होयगी, जिन लीयो हरि नाम ॥१३॥
अष्टादश गीता विषें, कह्यो मोक्ष संन्यास ।
महाभारत के मध्य में, ब्रह्म विज्ञान प्रकाश ॥१४॥
मेटे सब संशय तुरत, क्षमा किये अपराध ।
दास आपनो जान कर, कह्यो स्वधर्म अगाध ॥१५॥
भक्ति वश्य श्री कृष्ण जू, यही धारणा धार ।
भजन करो बहु भांति से, सो ही वेद का सार ॥१६॥
जो कोऊ चाहत भगति, कृष्ण चरण मन लाय ।
अन्य परिश्रम छांड़ि के, सम्यक ध्यान लगाय ॥१७॥
लोक कृतारथ के लिये, कृष्ण ज्ञान को शोध ।
आनंद भगवन ने कियो परमानंद प्रबोध ॥१८॥
आत्मानन्द प्रबोध यह, कीनो आनंद श्याम ।
नित्त विचारै या सुनै, सो पावें प्रभु धाम ॥१९॥
नारायण हरि नाम को, करो हृदय में ध्यान ।
कृष्ण कृपा करि देंयगे, भक्ति दान भगवान ॥२०॥

भक्ति योग्य में था नहीं, बिन साधन अधिकार।
नारायण शान्ति दई, स्वामी बड़े उदार ॥२१॥
कृष्ण धाम प्यारा लगे, विचरत तिहि के ठांहि
भक्ति बीज प्रभु बो गये, व्रज चौरासी मांहि ॥२२॥
बंशी वट शोभा अधिक, भजन आश्रम नाम।
नित्य प्रती दरशन करें, महिमा जीवन राम ॥२३॥
प्रश्नोत्तरी का पाठ जे, नित्त करें मन लाय।
पावें भक्ति अखंड सो, श्री हरि करें सहाय ॥२४॥
महिमा गाई कृष्ण की, शान्ति भई अगाध।
नारायण ने काट दीं, सब संसारी व्याधि ॥२५॥
लिखी प्रशंसा कृष्ण की, वास रानियां मद्धि।
सेवक काशी राम को, राम देइ शुभ बुद्धि ॥३६॥

षोड़स मन्त्र

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥१६॥

भाव यह है कि इस षोड़स मंत्र की १३ माला नित जाप करने से २२४६४ नाम का जप हो जाता है और ४ घण्टे में १३ माला अठोतरी का जप हो सकता है और हर मनुष्य के दिन रात में २१६०० स्वास आते हैं, इस लिये प्रति स्वास के नाम को मुजरा देकर भी १८६४ नाम की और अधिकता हो जाती है इस वास्ते ४ घण्टे ही में इस मंत्र के जाप करने से मनुष्य अपना जन्म इस कलुकाल में भी अच्छी तरह से सफल कर सकता है।

(ओम् श्री गुरु परमात्मने नमः)

(निवेदन)

इस संसार विषे प्रकट है कि प्राणी मात्र ऐसे सुख की आशा करते हैं कि जो कभी नष्ट न हो और दुख का जिसमें लेश मात्र भी न हो परन्तु अविद्या की ऐसी अद्भुत महिमा है कि जिस पदार्थ की प्राप्ति चाहते हैं उसके विरुद्ध साधनों में प्रवृत्त होते हैं वेद भगवान का डंका भी नहीं सुनते (श्रुति) (तरित शोकमात्मवित) अर्थ आत्मा वेता शोक को तरता है (अन्य श्रुति) (नान्यः पंथा विद्यते अयनाय) अर्थ आत्म-ज्ञान के सिवाय कल्याण रुप मोक्ष का और कोई मार्ग नहीं है यह वेदान्त का सिद्धान्त है और संत जनों का भी यही अनुभव है परन्तु ब्रह्म ज्ञान बिना सर्व प्रकार के दुःखों की आत्यंतिक निवृति रूप परमानन्द की प्राप्ति मोक्ष कदापि नहीं होती यह नियम है और अनेक पुरुपों का यह भी विचार है कि अत्यंत धन संतान राज्यादिक की प्राप्ति से पूरा सुख हो जायगा, परन्तु यह विचार उनका निःसार है क्योंकि विषयों में सुख होता तो पूर्व समय के मुमुक्षु पुरुष राज्यादि का त्याग करके वैराग्य नहीं धारण करते किन्तु विना तीव्र वैराग्य के संसार में सम्यक ज्ञान होना असम्भव है तत्व का विचार ही पर वैराग्य का कारण है इस लिये विवेकादि चतुष्ट साधन संपन्न को ही आत्म तत्व के निरन्तर विचार

से संसार की निःसारता और विषय भोगों की तुच्छता या अपने सच्चिदानन्द रूप ब्रह्मात्म भाव की दृढ़ अपरोक्षता सिद्ध होती है।

ब्रह्मविद्या के अधिकारी दीवानचंद व मुकंदीलाल से आदि लेकर बहुत से धर्मात्मा सज्जनों की यह अभिलाषा थी कि हिन्दी भाषा में कोई ऐसा वेदान्त प्रति पादक छोटा सा ग्रन्थ होना चाहिये जिसका पाठ विचार भाषा प्रेमी सभी वर्णाश्रमी स्त्री पुरुषों के लिये सुलभ और बुद्धिग्राह्य हो उन्हीं अधिकारियों की इच्छानुसार मैंने वेदान्त प्रश्नोत्तरी नामक इस छोटे से ग्रन्थ में श्री योग वासिष्ट का सार सिद्धान्त लेकर ब्रह्मात्म तत्व का अनेक प्रकार से निरूपण किया है और पर वैराग्य का भी सूक्ष्म रीति से स्वरूप दिखलाया है इसमें मुझ अल्प बुद्धि वाले की कुछ विद्वता नहीं है आशा है विद्वत मुमुक्षु अधिकारी जन आदर सहित आद्योपान्तः इस ग्रन्थ का विचार करेंगे तो तत्वदर्शी विद्वानों को विनोद का कारण और अद्वैत परमात्मा की प्राप्ति का हेतु होगा और कोई अशुद्धता कहीं पर इस ग्रंथ में रह गई हो तो विद्वान् सज्जन पुरुष अपने शान्ति गंभीर स्वभाव से शुद्ध करलें और मुझ पर अपनी कृपा दृष्टि से क्षमा करें।

सर्वेश्याम् शिवम् भूयात्। चराचरानुचर ॥

स्वामी शान्तानन्द

नोट

(१) इस ग्रन्थ विषे मनरूपी दृष्टा दीवानचन्द नाम संज्ञा से प्रश्नकर्ता अधिकारी है।

(२) उत्तरदाता साक्षी वसिष्ट जी उपदृष्टा गुरू हैं।

(३) ग्रंथ विषे तू तेरा शब्द अपने मनात्म को लिखा है।

(४) ग्रन्थ विषे कोई शब्द या मात्रा अशुद्ध न्यूनाधिक लिखा गया हो तो टायप कर्ता उसको शुद्ध करके छापेंगे।

(५) यह ग्रन्थ धर्मार्थ बाँटा जावेगा।

(६) इस ग्रन्थ के शोधक पंडित राधावल्लभ जी सहरोई निवासी हैं।

(७) ग्रन्थ विषे रामायण के चौपाई दोहे जो कहीं पर लिखे हैं उनका पहले पिछले का विचार कुछ नहीं किया जो ध्वनि में आगये वही लिखे गये हैं।

———

मंगलाचरण

वन्दे देवमुमापति सुरगुरुं वन्दे जगत कारणम् ।
वन्दे पन्नग भूषणं मृगधरं वन्दे पशुनां पतिम् ।
वन्दे सूर्य्य शशाङ्क वन्हि नयनं वन्दे मुकुन्दं प्रियम् ।
वन्दे भक्ति जनाश्रयं च वरदं बन्दे शिवं शङ्करम् ॥
त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेवः ॥
शुक्लां वरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्न वदनं ध्यायेत सर्व विघ्नोपशांतये ॥

वेदान्त व्याख्या दोहावली

॥ श्लोक ॥

त्रिभिर्गुण मयैर्भावैरै एभिः सर्वमिदं जगत ।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥ ७ का. १३ ॥
अवजानन्ति मां मूढ़ा मानुषी तनुमाश्रितम् ।
परं भावमजानंतो मम भूत महेश्वरम् ॥ ९ का. ११ ॥

॥ दोहा ॥

तीनों गुन के भाव जे, तिन मोह्यो संसार ।
मोको कोऊ नहिं लखे, इनते पल्लीपार ॥ १ ॥
मोको मानस जानिकै, आदर करत न कोय ।
मूरख यह जानत नहीं, यहै जु ईश्वर होय ॥ २ ॥

वाचक ज्ञानी जगत में, छौंकें झूठा ज्ञान ।
ब्रह्म कहें नित आप को, विषयों में गलतान ॥ ३ ॥

बात सुनाऊं कौन को, बहरा भयो जहान ।
सुनत २ नहिं सुनत है, विषयों में गलतान ॥ ४ ॥

वाच्यार्थ नहिं कहि सकू, ब्रह्म अद्वैत प्रसंग ।
सम्यग वृति धार तू, समझ लक्षणा अंग ॥ ५ ॥

॥ सवैया ॥

अल्प अहार करे नित ही और थोड़ो वकै पुनिरात को जागे ।
वैठि एकांत अभ्यास करै सुख मौन गहे सब वाद कूं त्यागे ॥
संत समागम हो जब ही तब ही कुछ मुक्ति की युक्ति कूं मांगै ।
आठों साधन भरपूर करै, सुख पूर्ण चहे तौ समाधीमें लागे ॥६॥

॥ दोहा ॥

करो समाधी राति दिन कर्तव्या कूं त्याग ।
अपने में आपा लखो गर्क नींद से जाग ॥ ७ ॥

सवैया

ब्रह्मात्म को एक लखे सब के घट में परिपूर्ण जाने,
शुद्ध अखंड अनंत अरंग असंग अरूप अमी रस छानैं ।
ज्ञान सुनायके मेटत आत्म सर्व को अपना आत्म मानैं,
निर्भय जो सुख चाहे तौ मानले आत्मज्ञानो से रार न ठानैं ॥८॥

दोहा

अर्ध श्लोक करि कहत हूं, कोटि ग्रन्थ को सार ।
ब्रह्म सत्य मिथ्या जगत, जीव ब्रह्म निर्धार ॥९॥
ब्रह्म रूप अहि ब्रह्मवित, ताकी वाणी वेद ।
भाषा अथवा संस्कृत, करत भेद भ्रम छेद ॥१०॥

असंग निश्चय मानिये, साक्षी पूर्ण रूप।
सो असंगता कहत हूं, समता परम अनूप ॥११॥
उदार आत्म ज्ञान में, लगा रहे दिन रात।
त्यागे संगत लोक की, सुखी होय मन गात ॥१२॥
व्यक्ति अवक्ती रूप दो, आत्म एक अगाधि।
स्वप्न जाग्रत व्यक्त हैं, तृतीया भिन्न समाधि ॥१३॥
पट कागज़ के मांहि ज्यों, चित्तरकारी जान।
तैसे आत्म ब्रह्म में, जगत चित्र का भान ॥१४॥
ज्यों जल जाने आपकूं, लहर तरंग अनन्त।
तैसे जान सरूप को, विराट रूप भगवंत ॥१५॥
पढ़ता नहीं पढावता, वंध्या सुत ज्यों वेद।
तिमि अत्यन्ता भाव है, कल्पित मायक भेद ॥१६॥
चढ़ता नहीं चढ़ावता, मृग तृष्णा का नीर।
तैसे जगता भास है, केवल ब्रह्म गंभीर ॥१७॥
फूल गगन में है नहीं, नही, सिन्धु में धूल।
तिमि अत्यन्ताभाव है, जितना जगत समूल ॥१८॥
शशके शृङ्ग अभाव हैं, रवि में तम का नाश।
तैसे जगता भाव है, सत चेतन्य प्रकाश ॥१९॥
अध ऊर्ध्वजल आत्मा, मध्य तरंग जहान।
ब्रह्मादि कभी बुद बुदे, उत्पत होते हान ॥२०॥
साक्षी स्वयम् प्रकाश हूं, साक्ष्य रह्यो परकाश।
स्थिर अपने आप में, अचल अजन्य अनाश ॥२१॥
जिसको नित तू ढूंढता, कर के साधन सार,
सोई आपै आप तू, पूरण ब्रह्म अपार ॥२२॥

अस्ति करके सिद्धि हो, जितता सर्व जहान ।
नाम रूप सब बुद्बुदे, अस्ति सिंधु समान ॥२३॥
अस्ति ऊर्ध्व अध जान तू, अस्ति सब संसार ।
प्रत्यक्ष सब में अस्ति ज्यों, त्यों तरंग में वारि ॥२४॥
अस्ति सत घण रूप है, कल्पित कोटि ब्रह्माण्ड ।
अस्ति बिन कुछ है नहीं, अस्ति सर्व अखंड ॥२५॥
भापे पार्थिव मृतिका, घट का होना नाहिं ।
होना सर्व स्वरूप का, विश्व न जिसके माहिं ॥२६॥
अस्ति नास्ति जगत की, जिस कर होवे भान ।
सोई परमानन्द तू, सर्व अस्ति भगवान ॥२७॥
ज्यों जल की अस्ति भई, सर्व तरंगों माहिं ।
त्यों अस्ति लख ब्रह्म की, जग की अस्ति नाहिं ॥२८॥
सर्व दुख का मूल जो, अहं परिछिन्न पिचान ।
इसके नाशन हेतु करु, ब्रह्म समष्टी ध्यान ॥२९॥
काष्ट मिलै ज्यों वन्हि से, अग्नि रूप हो जाय ।
ध्यान समष्टी से तुरत, परिछिन अहं नशाय ॥३०॥
होंगे शांत अनर्थ सब, करो समष्टी ध्यान ।
बोध रूप सम दृष्टि से, दुःख द्वन्द सब हान ॥३१॥
समता रूपी कवच को, पहिरें पुरुष महान ।
काम क्रोध रिपु के जभी, निष्फल होंगे बान ॥३२॥
सर्व दृश्य यह आत्मा, ऐसा कर अभ्यास ।
ध्यान समष्टी से सकल, तम का होय विनाश ॥३३॥
आपे में सब देखता, ब्रह्म रूप संसार ।
निर्भय पूर्ण होय है, दृष्टी दिव्य अपार ॥३४॥

परम ज्ञान सब आत्मा, अद्वैत अनन्त स्वरूप ।
केवल अपना आप है, जिसका रंग न रूप ॥३५॥
स्वयं ज्ञान सुख रूप है, अद्वैत नित्य गंभीर ।
अधिकारी ही पावता, में मेरी तज धीर ॥३६॥
शत्रु मित्र सब चित्त में, आतम में कुछ नाहिं ।
सुख दुख मन की कल्पना, प्रकाश साक्षी माहिं ॥३७॥

॥ दोहा ॥

धर्म सहित सब इंन्द्रियां, मनो मात्र ही जान ।
द्रष्टा तुही असंग है, मिथ्या दृश्य पिछान ॥ ३८ ॥
बार बार भाषे पुरुष, मिथ्या दृश्य जहान ।
ग्राह्य वस्तु कुछ है नहीं, ग्राहक मन निरवान ॥ ३९ ॥
चंचल चित्त स्थिर करो, सर्व सुखों की खान ।
चित्त समाहित करत जो, ब्रह्म सम्पदा पान ॥ ४० ॥
सब साधन का मूल जो, सो हम अजपा जाय ।
वृत्ति स्वास चढ़ाउ जनु, धनुष चढ़ाये चाय ॥ ४१ ॥
मन जावै तो जानदे, तू मत लागे संग ।
वृत्ति अनात्म होंयगी, या साधन से भंग ॥ ४२ ॥

अथ प्रश्नोत्तरी आरम्भ

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णां पूर्ण मुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवा वशिष्यते ।। ॐ शान्ति ३ ।।

प्रश्न—दीवान उवाच—हे भगवन् सब से बड़ा संसार विषे कौन है।

उत्तर गुरुरुवाच-हे सोम्य सुनो ? मंडलेश्वर से राजा बड़ा है-राजा से चक्रवर्त्ती और इससे यम और यम से इन्द्र व इन्द्र से ब्रह्मा व ब्रह्मा से ब्रह्मपद बड़ा है सो गुरु की कृपा से प्राप्त होता है इसलिये गुरु पद सब से बड़े का बड़ा है ?

दोहा

मात तात भ्राता सुहृद—इष्टदेव नृप प्रान ।
अनाथ सुगुरु सब से अधिक, दान ज्ञान विज्ञान ।।
गुरु गोविंद दोनों मिले, किसके लागूं पांय ।
बलिहारी गुरुदेव की, जिन गोविंद दिये मिलाये ।।

हे जिज्ञासुओ ? गुरु ने लक्षणावृत्ति कर कहा जो (अहं ब्रह्मास्मि) वेद श्रुति प्रमाण सो ही आपका आत्मा निर्विकार ब्रह्म है सो सर्व का अधिष्ठान होने से सब से बड़ा है ऐसा निश्चय करो ।

प्रश्न—हे प्रभु ! अनेक दुःखों का मुख्य कारण क्या है ?

उत्तर—हे दीवान ? सर्व दुःखों का मुख्य कारण वासना

अर्थात (फुरना) है सो नाना प्रकार के भ्रम दिखाती है जगत रूपी बन में जन्म रूपी वेलि वासना कर बढ़ती है जब सम्यक् ज्ञान रूपी कुठार से काटोगे तब मन विषे वासना का क्षोभ मिटेगा जब शरीर रूपी अंकुर मन रूपी बीज से उपजै नहीं जैसे भुना बीज नहीं उगता तैसे ही वासना रहित मन शरीर को नहीं धारण करता, यह मलिन वासना का त्याग ही मोक्ष का उपाय है।

प्रश्न—हे प्रभो! मन की त्रिपुटी कैसी है।

उत्तर—हे दीवान – अहं कर्ता है मन करण है कर्म क्रिया है इसी कारण से मन को कर्म रूप कहा है इस मन की इतनी संज्ञा है, मन–बुद्धि–अहंकार–कर्म–कल्पना–स्मिति–वासना–विद्या–इन्द्रिय पर्यंत–प्रकृति–माया–इत्यादिक कल्पना संसार का कारण हैं।

प्रश्न—हे भगवन्, यह मन जड़ है किं वा चैतन्य है सो कहो।

उत्तर—हे प्रिय दर्शन, मन न केवल जड़ है और न चैतन्य है जड़ चैतन्य की जो गांठ रूपि संधि मध्य भाग तिसका नाम मन है। संकल्प विकल्प इस के विषय हैं और जिसका कारण कल्पित है उसका कार्य भी कल्पित होता है यह नियम है। इस लिये यह मन रूपी जगत चैतन्य का विवर्त है और माया का परिणाम है। अर्थात् शुद्ध चैतन्य मात्र में जो माया के तादात्म सम्बन्ध से फुरना हुआ है तिसका नाम मन है।

बहुधा आज कल के पुरुष साधू महात्मा के पास

आते हैं तब यही कहते हैं कि महाराज कुछ उपदेश करो उसके उत्तर में उनसे यह कहा जाताहै कि भाई भगवान का भजन करो। ऐसा सुन कर यह जवाब देते हैं कि महाराज हम भजन कैसे करें मन नहीं ठहरता। अब देखिये कि मन के ठहरने का उपाय ही भजन बतलाया है मगर उन का ख्याल तो देखिये कि विना कर्म किये ही कार्य की सिद्धि चाहते हैं।

जैसे कोई पुरुष कहे कि पवन ठहर जायगा जब हम प्राणायाम करेंगे अब विचारिये कि पवन के ठहरते ही प्राण भी शान्त हो जावेगा तो प्राणायाम सिद्ध कहां हुआ यानी प्राणायाम की सिद्धि से मनोनाश होता है और मनोनाश से वासना क्षय होती है और वासना क्षय से तत्व ज्ञान होता है फिर तत्व ज्ञान से मोक्ष होता है ऐसा वेदान्त का नियम है अब चूंकि आज कल के जिज्ञासु कर्म उपासना की अवधि न होने से पहिले ही मनो नाश की इच्छा करते हैं अब जैसे कोई तारू पुरुष कहे कि हम जल में जब पांव देंगे तब तैरना सीख लेंगे। अब देखिये कि क्या वह भूड़ में तैरना सीख सक्ते हैं, अज्ञान कर के यह प्रतिज्ञा उनकी विपरीत है।

तैसे ही जिज्ञासु जन यावत शास्त्र विहित कर्म उपासनादि साधन नहीं कर लेंगे तावत मन रूप अंतःकरण की शुद्धि अर्थात् स्थिति नहीं हो सकती है अथवा स्थिर मन की स्थिति वा शुद्धि का उपाय अभ्यास और वैराग्य भी गीता के षष्ट अध्याय के ३५ श्लोक विषे कहा है। भगवान उवाच :—

असंशयं महाबाहो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥

प्रश्न—हे प्रभो ! मन जीतने का और भी कोई उपाय है

उत्तर—हे दीवान—मन के मरने का अन्य उपाय यह भी है कि दृश्य की ओर से मन कूं निवृति करना और आत्म चैतन्य संवित विषे ही लगाना यह भी मन के जीतने का उपाय वसिष्ट जी ने कहा हैं इच्छा करने से मन पुष्ट होता हैं और इच्छा निवृत होने से मन उपशम हो जाता है।

हे मित्र तेजपाल जी देखो प्रथम जब तुम भोगों की वासना का त्याग करोगे तब यत्न बिना जगत की वासना छूट जायगी। जैसे अग्नि में घृत वा ईंधन डालने से अग्नि और अधिक प्रज्वलित होती है। तैसे अविद्या विषय वासना की तृष्णा करके बढ़ती जाती है जब विवेक रूपी जल करके सींचन करोगे तभी विषय वासना रूपी अग्नि ही शान्त जावेगी।

अस्तु—हे प्रियवर—मूर्ख अज्ञानी को यह विषय भोग सुन्दर भाषते हैं। जैसे कीट पतंग दीपादि प्रकाश को सुखरूप जान कर प्रवेश करते ही प्राणान्त हो जाते हैं। तैसे ही अज्ञानी मनुष्य विषयों को सुख रूप जान कर जन्म मरण पाते रहते हैं वह त्याग वैराग्य विना कदापि संसार से न छूटेंगे। हे भाई यह जो कुछ दृश्य है सो अविद्या कर फुरा है अविद्या सर्वात्म भाव ज्ञान करके नाश होती है।

ब्रह्मा से तृष्णा पर्यंत सो सब आत्म रूप है अविद्या भी भ्रांति करके भासती है आत्मा से भिन्न कुछ और पदार्थ सिद्ध होते नहीं आत्मा ही सर्वत्र अशब्द चिद्धन रूप व्यापक है।

प्रश्न—हे प्रभो—सन्सार विषे वर्तमान समय में अनेक मत मतांतर होने का क्या कारण है।

उत्तर—हे दीवान जैसे एक ही स्थान के अनेक मार्ग होवें सो अनेकों मार्ग करके उसी स्थान को पहुंचता है। तैसे अनेक मत मतांतरों का उपास्य अधिष्ठान एक चेतन आत्म सत्ता ही है और जो भिन्न २ मत विषे जो वादःववाद करते हैं वह सब आत्मतत्व के अज्ञान करके करते हैं। सिद्धान्त सब का एक ही है तिस विषे विवाद कोई नहीं इसलिये वर्तमान समय में अनेक मत मतांतरों का कारण अज्ञान है जितने कुछ मत पंथ वाले हैं पक्षपात करके अपने मत पंथ को सिद्ध करते हैं और राग द्वेष करके अन्य मत का खंडन मंडन करते हैं यही अज्ञान का चिह्न है। रागोलिङ्ग मवोधस्य यह सूत्र प्रमाण है।

प्रश्न—हे प्रभो—ज्ञान की कितनी भूमिका हैं?

उत्तर—हे दीवान—ज्ञान की सर्व सप्त भूमिका हैं। (१) प्रथम शुभेच्छा (२) दूसरी सुविचारणा (३) तीसरी तनु मानसा (४) चतुर्थी सत्वा पत्ति (५) पंचमी असं शक्ति (६) छटी पदार्थ भावनी (७) सप्तमी तुरिया इन के सार को जान कर शोक नहीं करता अर्थ यह है कि तीन भूमि का जगत की जाग्रत अवस्था में हैं और चौथी तत्व ज्ञानी की है और पंचम षष्टी सप्तमी जीवन मुक्ति की अवस्था हैं और तुरिया तति पद विषे विदेह मुक्त होता है। हे दीवान! जैसे सुषुप्ति पुरुष को रूप और इन्द्रियों का अभाव हो जाता है तैसे सप्त भूमिका विषे भी इन्द्रियादिक सर्व पदार्थों का अभाव हो जाता। हे प्यारे मित्र! जैसे मृतिका की सेना विषे हस्ती घोड़ादि होते हैं सो सब मृतिका रूप हैं और कुछ नहीं तैसे सब जगत आत्म रूप है भ्रम करके नानात्व भासता है आत्मा ही अपने आप

विषे पूर्ण रूप है ।

प्रश्न— हे प्रभो – शरीर के षट विकार कौन से हैं जिन को षट उर्मी भी कहते हैं ।

उत्तर—हे प्रिय—(१) अस्ति (२) जायते (३) वर्धते (४) विपरिणमते (५) क्षयते (६) नश्यते ये शरीर के षट विकार हैं इन्हीं को षट उर्मी कहते हैं आत्मा इन षट विकारों से रहित निर्विकार है ।

प्रश्न—हे प्रभो—षोडस कला वाले पुरुष की षोडस कला कौन सो हैं ?

उत्तर—हे दीवान—१ प्राण २ श्रद्धा ३ बुद्धि ४ आकाश ५ वायु ६ जल ७ तेज ८ पृथ्वी ९ ज्ञान इन्द्रिय कर्म इन्द्रिय १० अंतः करण ११ अन्न १२ वीर्य १३ तप १४ वेद १५ रूप १६ नाम ये षोडस कलां हैं ।

प्रश्न—हे प्रभो—अभाव कितने प्रकार का है ?

उत्तर—हे प्रिय —अभाव चार प्रकार का है । प्राग भाव, २ प्रध्वंसाभाव, ३ अन्योन्याभाव, ४ अत्यन्ताभाव, उक्त तीन प्रकार का अभाव जिस के हृदय विषे हैं तिस कर के जगत दृढ़ रहता है उस को शान्ति नहीं होती जब जगत का अत्यन्ताभाव होवे तब शान्ति होवेगी ।

प्रश्न—हे प्रभो—ज्ञानी अज्ञानी का व्यवहार सम होता है या विषम होता है सो कहो ?

उत्तर—हे दीवान—ज्ञानी अज्ञानी की व्यवहार दशा तुल्य है परन्तु शक्ति अशक्ति का भेद है अज्ञानी राग कर के शक्त हुआ विद्यमान हो जाता है और ज्ञानी वैराग्य कर के

असंशक्ति निर्लेप रहता है इसलिये ज्ञानवान मोक्ष रूप है और अज्ञानी बन्ध है वास्तव आत्मा में कोई बन्ध मोक्ष नहीं है यह सब अन्तःकरण के धर्म हैं। हे दीवान—अज्ञानी वाह्य क्रिया का त्याग करता है तो भी बन्ध है और ज्ञानवान क्रिया करता है तो भी मोक्ष है क्यों कि वास्तव क्रिया करने में अहं प्रत्यः अन्तःकरण इद्रियों का धर्म है आत्मा धर्मी प्रतियोगी से रहित है इस लिये कर्ता भोक्तापना अन्तःकरण का धर्म है आत्मा का नहीं, आत्मा निर्लेप सदा एक रस ज्यों का त्यों रहता है ऐसा ज्ञानी का निश्चय है।

प्रश्न—हे प्रभो—जब आत्मा देश काल वस्तु के परिच्छेद से रहित है नित्य निर्मल है तिस विषे मन नामक मलिन संवित (फुरना) कैसे उत्पन्न हुआ सो कहा ?

उत्तर—हे दीवान—जैसे जल जिस रंग के साथ मिलता है तैसा रूप हो कर भासता है तैसे ही मन जिस पदार्थ के साथ मिलता है तिस का रूप हो जाता है वास्तव में आत्मा से उपजा कुछ नहीं, सर्व कार्य का बीज मन है मन और कर्म परस्पर अभिन्न हैं। हे प्यारे—प्रकृति माया के सम्बन्ध से मन अनुलोम परिणाम को प्राप्त हुआ अन्तर्मुख आत्मा की ओर जाता है और प्रति लोम परिणाम हुआ दृश्य की ओर जाता है वेदान्त वादियों ने यह निश्चय किया है कि यह दृश्य सर्व ब्रह्म ही है और आत्मा अद्वैत शुद्ध रूप है तिस से मन का उत्पन्न होना वंध्या पुत्र के सदृश है भ्रांति करके भासता है मन का रूप संकल्प विकल्प है तिस का त्याग करो हे वत्स—जब तुम सर्व भाव विषे असंग-

होंगे तब सर्व पदार्थों विषे द्रष्टा पुरुष प्रसन्न होगा तिस कर के निर्विकल्प चिदात्म की प्राप्ति होवेगी स्वरूप की प्राप्ति का नाम ही मोक्ष शास्त्रकारों ने कहा है। हे दीवान—जब तक जिज्ञासु को यह विचार नहीं उपजा कि मैं कौन हूं और ब्रह्म क्या है और माया किसे कहते हैं तब तक संसार रूपी अंधकार में रहता है और जिस ने यह जान लिया कि संसार भ्रम मात्र मिथ्या उदय हुआ है मैं और ब्रह्म सो तो चैतन्य हैं और माया जड़ है सो भी निज रूप से भिन्न कुछ सिद्धि होवे नहीं इस लिये मैं ही त्रिकाल अबाध्य नित्य मुक्त स्वरूप सिद्धि हुआ यह द्वैत कल्पना मन की फुरना करके अविद्या से उत्पन्न हुई है ब्रह्म विद्या करके इस का नाश होता है। हे दीवान ? जैसे विष और अग्नि नाश का कारण है तैसे विषय भोग भी नाश के कारण हैं ऐसा जानकर इनका त्याग करो और बारम्बार यही विचार करो कि विषय भोग विष को नाईं हैं ताते सत्संग और सच्छास्त्र अभ्यास द्वारा इन विषयों का त्याग करोगे तभी सुखी होओगे। हे प्रिय तृष्णा रूपी सूत्र के जाल से जो पुरुष निकल गया है सो ही शूरमा है मन करके तृष्णा रूपी वासना का उदय होना ही दुःख का कारण है और वासना का अनुदय ही सुख का हेतु है।

हे दीवान—इस पुरुष को अपने बंधन का कारण अपनी कल्पना अर्थात् संकल्प है। जैसे घुँराण कीट अपने यत्नो करि आप ही बंधन को प्राप्त होता है तैसे पुरुष अपनी वासना कर आप ही संसार बंधन को पाता है याते भोग की वासना मन से त्याग करो सर्व दुखों का बीज वासना ही है।

हे प्रिय—यह दृश्य भ्रांति असतमात्र है सतरूप नहीं अज्ञान करके भेद विकार भासते हैं वास्तव में न कोई बंध है न मोक्ष है यह इन्द्रजाल की नाईं मिथ्या भ्रांति है सो अधिष्ठान के सामान्य ज्ञान से होती है और अधिष्ठान के विशेष ज्ञान से इसकी निवृत्ति हो जाती है आत्मसत्ता बंध मोक्ष दोनों से रहित है एक अद्वैत ब्रह्मरूप सत्ता अपने आप विषे स्थित है जब अभ्यास और वैराग्य रूपी मन अंकुर को सींचता है तब ब्रह्मसत्ता को पाता है अन्यथा नहीं पाता तब ग्रहण त्याग की वृति नष्ट हो जाती है बंध मोक्ष कोई भी नहीं भासती केवल अद्वैत ब्रह्मसत्ता ही शेष रह जाती है सोई अपना स्वरूप है स्वरूप की प्राप्ति ही मोक्ष कही जाती है आत्मा का बंध नहीं जो मोक्ष होवे याते आत्म विषे बंधादिक सर्व कल्पित हैं।

प्रश्न—हे प्रभो—आत्मा चैतन्य रूप है तिस विषे जगत कैसे उत्पन्न हुआ है।

उत्तर—हे प्रिय—जैसे सोम्य जल विषे तरंग अव्यक्त रूप होते हैं तैसे आत्मा विषे जगत संकल्पमात्र होता है उपजा कुछ नहीं जैसे आकाश सर्वगत है तैसे आत्मा सर्वव्यापक है अव्यक्त अच्युत रूप है चैतन्यसत्ता चेत्यता फुरने कर जगत रूप भासतो है जगत कुछ भिन्न वस्तु सिद्धि होवे नहीं ज्ञानवान पुरुष को तो एक आत्मा ही भासता है और अज्ञानी को नाना जगत भासता है उपजा कुछ नहीं भ्रम मात्र है। हे भाई—यह जगत आत्मा विषे न सत है न असत है जैसे स्वर्ण विषे भूषण हैं तैसे आत्मा विषे जगत है आत्मा से व्यतिरेक कुछ सिद्धि नहीं होता चैतन्य आत्मा अपने आप में आप स्थित है। हे दीवान

जो अर्ध प्रबुद्ध हैं तिन को सर्व ब्रह्म कहना नहीं शोभता काहे ते कि उनका चित भोगों से सर्वथा व्यतिरेक नहीं हुआ सर्व ब्रह्म है ऐसा वचन सुन कर भोगों विषे आशक होना सो अपने नाश का हेतु है किन्तु अद्वैत निश्चय ज्ञान विना निरंतर आत्म अभ्यास करे ।

प्रश्न—हे भगवन्—यह जीव ब्रह्म से कैसे उत्पन्न हुआ और कितने जीव हैं सो कृपा कर के मुझ से कहो ।

उत्तर—हे दीवान ? शुद्ध ब्रह्म तिस को चेतन्य शक्ति वृति है सो निर्मल है किंतु सो अविद्या वसिष्ट चेतन्य वृति हो जीव भाव को प्राप्त हुई है संकल्प विकल्प होकर मन रूप हुई है मन के तन्मय रूप हो कर चार प्रकार के जीव अनंत जगत विषे भास आये हैं एक जरायुज दूसरे अंडज तीसरे स्वेद्ज चौथे उद्भिज ये प्रथम ब्रह्मा के संकल्प कर फुरे हैं तब प्रजापति होकर चार प्रकार के भूत जात उत्पन्न किये हैं सो भौतिक जगत विषे फुरणा मात्र अनन्त जीव भये हैं ।

प्रश्न—हे भगवन्-ब्रह्म तो अनन्त विकार रहित निरवयव रूप कहा तिस विषे सावयव रूप जीव कैसे उत्पन्न भये ।

उत्तर—हे प्रिय दर्शन—एक ही अधिष्ठान शुद्ध ब्रह्म विषे जीवों का अभिन्न उपादान और निमित कारण ईश्वर भ्रांति कर भासा है सो भ्रांति मात्र है माया वसिष्ठ चेतन तिस की संज्ञा है कल्पना मात्र है कल्पित कारण से कार्य्य की भी कल्पित जीव संज्ञा हुई है ? वास्तव ब्रह्मात्म निरवयव निराकार ज्यों का त्यों है जीव ईश आभास कर हुये हैं (श्रुति) जीवे

शा भासेन करोति यह श्रुति प्रमाण हैं ।

हे दीवान—शुद्ध ब्रह्म सत्ता विषे संवेदना भास फुरना विद्या अविद्या रूप दो संज्ञा कल्पी हैं जो आत्मा की ओर फुरना है वह विद्या है और अनात्म संसार की ओर फुरना है सो अविद्या है या ते अविद्या कर अविद्या का नाश करो अथवा आत्म ज्ञान कर अविद्या का नाश करो यही मोक्ष का मार्ग है ।

हे प्रिय— न तो राज्य सत्य है न भोग सत्य है और न स्त्री पुत्रादि सत्य हैं कुछ सत्य नहीं तौ भी मिथ्या पदार्थों के निमित्त मूर्ख यत्न करते हैं जिनको सत्य सुखदाई जानते हैं वह असत् और बंधन के कारण हैं इन में कदापि सुख नहीं भोगों की तृष्णा कर के अनेक जन्मों को पाते हैं तृष्णा संतोष और विना वैराग्य के कदापि शान्ति नहीं होती है और जो कोई इस संसार का त्याग करके फिर संसार की ओर लग जाते हैं वह तो महा मूर्ख जड़ हैं । जैसे श्वान वमन को करके फिर ग्रहण करता है तैसे ही उनकी भी संज्ञा तुच्छ है ।

हे दीवान—हाथ में मिट्टी का ठीकरा लेकर चांडाल के घर में जाकर भिक्षा ग्रहण करे और आत्म तत्व की जिज्ञासा होवे तौ भी सर्व ऐश्वर्यवान से श्रेष्ठ परन्तु अज्ञानी मूर्ख का जाना व्यर्थ है ।

ज्ञान का साधन विचार, समता, संतोष, सत्संग है ।

दोहा—संतोषः परमोलाभः सत्संगः परमं धनम् ।
विचारः परमं ज्ञानं शमश्च परमं सुखम् ॥

विशेष कर यह चार साधन भी मोक्ष विषे उपयोगी हैं । हे भाई—जैसे स्वप्न विषे विषयी पुरुष कल्पित स्त्री से चेष्टा

करते हैं तो सुख कुछ नहीं तैसे ही अज्ञानी असत जगत को सत जान कर भोगों की इच्छा करते हैं बुद्धिमान नहीं करते अर्थात् जैसे जेवरी विषे सर्प भासता है तैसे मन के मोह कर जगत भासता है और भयानक होता है परन्तु भावना मात्र है याते ब्रह्म विषे शुद्ध भावना कर कि मैं ब्रह्म हूं इस दृढ़ भावना करके निश्चय ही ब्रह्म स्वरूप हो जायगा इस अर्थ विषे संशय नहीं करना जी। हे प्रिय— ज्ञानवान की नाईं व्यवहार विषे क्रिया करो जो नष्ट होवे सो होने दो जो प्राप्त होवे सो होने दो तिस विषे हर्ष शोक कुछ न करो जिस की बुद्धि में यह निश्चय हुआ है कि सर्व मैं ही हूं सो किसी पदार्थ की इच्छा भी नहीं करता जब इन्द्रियों के रागद्वेष से रहित होवे तब मुक्ति की इच्छा न करे तो भी मुक्त स्वरूप है ।

हे दीवान—जब तुम को जगत वासना फुरै तब तिसो काल विषे तिस को शीघ्र ही त्याग करो और विचारो कि यह दृश्य प्रपंच कुछ नहीं है असत रूप है ऐसी भावना करने से वासना नष्ट हो जावेगी—हे प्यारे तू सर्व का कर्ता आप को जान अथवा यह जान कि मैं न कुछ कर्ता हूं न भोक्ता हूं सदा अक्रिय रूप हूं यह सम्पूर्ण कर्म क्रिया देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्रकृति करें हैं अथवा इन दोनों प्रकार के निश्चय को त्याग कर निःसङ्कल्प हो जाओ।

हे दीवान - साधन अवस्था विषे आप को उचित है कि मैत्री-करुणा-मुदिता-उपेक्षा- इन निर्मल वासनाओं को अंगीकार करो मैत्री का अर्थ यह है कि सर्व विषे ब्रह्म भाव कर द्रोह किसी से न कर (करुणा) साधुओं से मित्र भाव और दुखी

पर दया करना करुणा कहिये है और धर्मात्मा पुरुष को देख कर प्रसन्न होना इस का नाम मुदिता है और पापियों से उदासीन रहना निन्दा न करना उपेक्षा है। हे मित्र—स्त्री आदिक विषय भोग कैसे हैं विष की नाईं हैं अज्ञानी को प्रिय लगते हैं ज्ञानवान की वृत्ति विषयों की ओर नहीं जाती दुख रूप जान कर त्याग करता है हे दीवान—प्रथम तुम आर्जव पद को प्राप्त होना अर्थात् यथा शास्त्र सत व्यवहार करना तिस कर अंतःकरण शुद्ध होता है निष्कपट संत का संग करना और सच्छास्त्रों का विचार करना और संसार के अनित्य पदार्थों में प्रीति न करना विरक्त रहना चार दिन की वाह २ में न फंस जाना निरच्छित होना त्रलोकी विषे सत की भावना करना मिथ्या भावना का त्याग करना क्योंकि यह दृश्य जगत सर्व मिथ्या है ब्रह्मात्म सत रूप है व्यापक है सो ही अपना आत्मा है त्याग और कुछ नहीं केवल अनात्म अहंकार का त्याग करना सो ही मुख्य त्याग कहा है शरीर की क्रिया मात्र व्यवहार का त्याग सो त्याग नहीं वह तो मिथ्या दंभ है।

प्रश्न— हे प्रभो—मुक्ति किसे कहें हैं और मुक्त पुरुष के क्या लक्षण हैं ?

उत्तर—हे दीवान—जो अहं मम आदिक कल्पना रूपी बंधनों से रहित हैं सो ही मुक्त कहे जाते हैं राग द्वेष दम्भ संशय विपर्यादि से रहित होना अहं मम आदि के अंतर भूत जानना और भी मोक्ष के बहुत से साधन हैं विस्तार भय से नहीं लिखे। यही श्लोक प्रमाण हैं।

अहंता ममता त्यागेषु राग द्वेष न दम्भता ।
संशय विपर्य्य मुक्तस्य, सस्वरूप विमोक्षसा ॥

हे अनघ—तुम निर्द्वंद होहु नित्य स्वरूप विषे स्थिति नियोंग क्षेम आत्मवान विशोक होकर स्थित होहु। सत्य संकल्प धैर्यवान यथा प्राप्ति विषे वर्तते हुए विगत ज्वर होहु (अर्थात निःसंताप) जैसे राम जी तौ निर्लेप थे श्री वसिष्ट जी ने उपदेश अधिकारियों के लिये किया तैसे तुम भी वीत राग होकर संसार विषे रहोगे तब कल्याण पद प्राप्ति होगा

प्रश्न—हे प्रभो—ब्रह्मा की आयु का प्रमाण तो कहो।

उत्तर—सुनो दीवान ब्रह्मा के एक दिन में चतुर्दश इन्द्र राज कर जाते हैं जब सहस्र चौकड़ी युगों की व्यतीत होती है तब ब्रह्मा का एक दिन होता है ऐसे २ तीस दिन का एक मास बारह मास का एक वर्ष ऐसे सौ वर्ष ब्रह्मा की आयु है इस के पश्चात महा प्रलय सृष्टि सहित ब्रह्मा की हो जाती है फिर शेषा रूप से केवल श्री विष्णु भगवान रहते हैं। रे चंचल मन, इस अल्प आयु पर भी जो परमानन्द स्वरूप तेरा आत्मा है सो तुझ को सुखदायक नहीं भासता दुखरूप मिथ्या संसार की इच्छा करता है ज्यों २ विषयों की इच्छा करता है त्यों २ दुख बढ़ता जाता है।

हे दीवान—सर्व का प्रति योगी काल हैं अनेक जीवों को काल ही भोजन करता है। जैसे मच्छर को दादुर और दादुरों को सर्प और सर्पों को नोला और नोलों को बिल्ली और बिल्लिओं को कूकर और कूकरों को वघाड़ और वघाड़ों को सिंघ और सिंघों को सरभ और सरभों को मेघ की गर्जना और मेघ को

वायु और वायु को पर्वत और पर्वत को इंद्र और इन्द्र को वज्र और वज्र को सुदर्शन चक्र ग्रस लेता है सोही विष्णु भगवान् का काल चक्र है इस से कोई नहीं बचता। तो भी मूढ़ जीव विषय रूपी कीचड़ में फंसे रहते हैं अपने निकलने का यत्न नहीं करते यह उन की बड़ी भारी भूल है।

हे दीवान—तुम अपने स्वरूप का स्मरण करो तुम तो जन्म मरण से रहित शुद्ध स्वरूप हो अज्ञानी मूढ़ मत बनों तुम को न सुख न दुख है न जन्म है न मरण है न कोई माता है न पिता है तुम एक अद्वैत रूप आत्मा अपने आप विषे स्थित हो ऐसा निश्चय करो।

प्रश्न—हे प्रभु। जहां सर्व सुख दुखों का और संशय विपर्य का नाश हो जाता है वह कौन स्थान है।

उत्तर—हे प्रियवर-जब तुम सांसारिक भोगों से उपराम होकर परम पुरुषार्थ का यत्न करोगे तब परब्रह्म पद विषे वि-श्रान्ती पाकर परमानन्द रूप मोक्ष को प्राप्त होंगे आत्म सा-क्षातकार होने के अनन्तर कोई सुख दुख आदिक नहीं रहते आत्म लाभ ही परम स्थान है।

प्रश्न—हे गुरुदेव चित की स्थिति का उपाय क्या है?

उत्तर—हे दीवान-जब तुम वहि रंग तीर्थादि कर्मों का त्याग करके निष्कपट संतो का संग और ब्रह्मविद्या शास्त्रों का विचार करके बारम्बार आत्म अभ्यास करोगे और संसार को मृग तृष्णा के जलवत या स्वप्नवत जान कर इससे भी वैराग्य करोगे तो इन दोनों उपायों करके चित की स्थिति होवैगी तभी आत्म पद की प्राप्ति होवेगी। हे दीवान—शब्दा-

दिक विषयों को भोगता हुआ भी इन्द्रियों का धर्म जानकर इन विषे आशक्तचित्त न होना अपनी वृत्ति को वारम्बार साक्षी आत्मा विष लगाना और यही जानना कि राग द्वेष इच्छा अनिच्छा हर्ष शोक भय लज्जा क्रोधादिक यह सर्व मन के विकार हैं मन भूतों का कार्य्य होने से अनित्य है इसलिये अपनी ज्ञान संवित वृत्ति को व्यापक साक्षी आतमा की ओर लगाना अनित्य जगत की ओर न जाने देना क्योंकि चित्त रूपी विष का वृक्ष है और देह भूमि पर लगा है संकल्प विकल्प चिंतन गुद्दे हैं और दुर्वासना पात्र हैं कामना रूपी फूल हैं और सुख दुख आदिक फल हैं और अहंकार रूपी कर्म जल है और चितारूपी जड़ है जब इसको विचार और वैराग्य रूपी कुठार से काटोगे तब शांति प्राप्त होवेगी। हे प्रियवर जो बड़े ऐश्वर्य कर सम्पन्न हैं और आत्मपद से विमुख हैं तिनको आप विष्टा कीट से भी तुच्छ जानों उसका जीना वृथा है और जो आत्मपद पाने का यत्न करते हैं, उनका जीना संसार में सफल है चाहे वह भिक्षुक भी क्यों न हों। हे दीवान—अनात्म विषे आत्म अभिमान और मित्र और पुत्रादिकों विषे ममत्व इस कर चित्त अहंकारी हो जाता है।

जब अनात्म अहंकार का त्याग करोगे तब आत्म रूपी निधि प्राप्त होवेगी हे मूर्ख मन तू उपशम को त्याग कर भोगों की ओर जाता है विषय बड़े दुःखों का कारण है। विष करके तो एक वार ही मरता है विषयों कर अनेकों वार मरता है ?

जैसे घुरांण अपना घर बना कर आप ही फंस मरता है तैसे तूं आप ही आप संकल्प कर बन्धन करता है। कदाचित

तुम बन्धनों से मुक्त होना चाहो तो सर्व संकल्पों को त्याग कर आत्म अभ्यास करो जिस से शांति होवेगी । हे मन! जब पतङ्गादि जन्तु एक-एक इन्द्रियों के विषय में आसक्त हो कर जल मरते हैं तू तो शब्दादि पांचों विषयों का सेवन करता है नाश क्यों न होवेगा या तो तू विषय की इच्छा त्याग दे और जो पुरुष सुन्दर स्त्रियों की प्राप्ति की इच्छा करेंगे वह भी पतङ्ग की तरह जल मरेंगे। हे मन—तेरा साथ करके मैंने बड़ा दुःख पाया अब तेरी चाल को मैंने जाना है कि आप ही संकल्प कर आप ही फंस जाता है फिर मुझ से वाइ वेला करता है कि मुझे दुःखों से बचाओ अब तेरे साथ मेरा कुच्छ प्रयोजन नहीं, तू जड़ है मैं चैतन्य आत्मा निर्विकल्प शुद्ध हूं।

जैसे महाकाश घट से मिल कर घटाकाश हो जाता है तैसे तेरे साथ मिल कर मैं तुच्छ हो गया था अब तेरा सङ्ग त्याग कर परम चिदाकाश को प्राप्त हुआ हूं तू संकल्प विकल्प वाला होने से विकारी है और मैं निर्विकार आत्मा असङ्ग हूं।

प्रश्न—हे गुरु देव—इस शरीर विषे अहं करने वाला कौन है? कृपा कर बताइये-?

उत्तर—हे दीवान—जैसे जेवरी विषे सर्प भासता है सो जेवरी के विशेष ज्ञान बिना सामान्य ज्ञान से भासता है। तैसे आत्मा के सामान्य ज्ञान से अहम् जीव फुरया है उसी को प्रमाता भी कहते हैं सोही अहम् करने वाला जीव है अधिष्ठान के विशेष ज्ञान से अध्यस्त अहंकारी जीव

का लय हो जाता है। वास्तव में अहंकारी जीव अज्ञान जन्य कल्पित है याते दुःख का कारण है चिदात्म की प्राप्ति के लिये अहंकार के स्वरूप का त्याग करोगे तभी अज्ञान का कारण कार्य्यं सहित अत्यन्ताभाव होगा।

प्रश्न—हे महेश्वर—एक समाधी कैसे होती है सो मुझ से कहो।

उत्तर— हे साधो नित्य प्रबुद्ध जिनका चित्त है और जगत का कार्य्यं भी करते हैं सो एकत्व आत्मा विषे स्थित हैं वह सम्यक ज्ञान कर के सर्वदा समाधिस्थ ही रहते हैं।

हे दीवान—बुद्धि ज्ञान भी वही है और श्रेष्ठ दिन भी वही है और मृत्यु भी वही है और वेद शास्त्र भी वही हैं जिस करके संसार से वैराग्य उपजे और निरंतर आत्म तत्वचिंतन करे नहीं तो सर्व देश काल वस्तु भ्रांतिमात्र अनित्य हैं ? हे लाल जैसे आकाश विषे बादल दृष्टि आते हैं परन्तु आकाश की स्पर्श नहीं करते तैसे ज्ञानवान के चित्त को रागद्वेष स्पर्श नहीं करते ज्ञानी को जिस समय जगत से सुषुप्ति दशा प्राप्त हुई उसी समय अन्तर शीतल हो जाता है रागद्वेष कुछ नहीं फुरते आत्मानन्द कर परिपूर्ण हो जाता है। जैसे लवण की पुतली समुद्र विषे लीन हो जाती है तैसे ज्ञानी भी आत्म रूप हो जाता है।

प्रश्न—हे प्रभो! अंतःकरण शरीर विषे क्या वस्तु है।

उत्तर—हे दीवान अहम् भाव वृति को जीव कहते हैं और निश्चय वृत्ति को बुद्धि कहते हैं और संकल्प विकल्प वृति को मन कहते हैं और चिंतनवृति को चित्तकहते हैं

यह अंतःकरण की चार वृति हैं जब यह वृति आत्माकार होती हैं तिसी समय अंतःकरण शुद्ध हो जाता है अंत में वृतियां भी स्वरूप को विषय करके अपने कारण में लय हो जाती हैं तब आत्मा का साक्षातकार होता है अंतेन्द्रियों को अन्तःकरण कहते हैं । हे दीवान ऐसा सुख स्वर्ग विषे नहीं प्राप्त होता और सुन्दर स्त्रियों के स्पर्श करके भी ऐसा सुख नहीं जैसा सुख निर्वासनिक पुरुष को प्राप्त होता है जिस सुख विषे त्रलोकी के सुख तृणावत् भासते हैं निर्वासनिक पुरुष जगत को देख कर हंसता है कि यह सब आशा रूपी फांसी में बंधे हैं । देखने मात्र धनी विद्वान् पण्डित हैं तौ भी चमड़ी दमड़ी के गुलाम की नाईं मोहरूपी फांसी में फंसे हुए हैं । बड़ा शोक है कि वह ऐसे दुख रूप संसार जाल से निकलने का उपाय क्यों नहीं करते । मेरे विचार में माया रूपी समुद्र भंवर जाल में प्रारब्ध बस पड़े हुए ऊर्ध्व अध आते जाते हैं (अर्थात्) ऊंच नीच योनियों को प्राप्त होते रहते हैं जैसे बटलोई के दाने जल विषे पड़े हुए अग्नि की उष्णता करके ऊपर नीचे आते जाते हैं तैसे ही उन को भी जानों जब वैराग्य और अभ्यास कर अज्ञान रूपी अग्नि शान्ति होवै तब शान्ति को प्राप्त होवेंगे अन्यथा नहीं हो सकते हैं ।

हे दीवान—वैराग्यवान पुरुष सुन्दर स्त्री से आदि लेकर जो दृश्य पदार्थ हैं तिन को भ्रम मात्र जान कर किसी की इच्छा नहीं करता और जिस ने आत्म साक्षातकार किया है वह बन में रहे अथवा घर में रहे व्यवहार करे वा समाधी लगावे वह सदा निर्लेप ज्यों का त्यों रहता है ।

हे प्यारे—जो सर्व वासनाओं को त्याग कर के हृदयाकाश विषे चेतन संवित का निरंतर ध्यान करे तो भी कुछ काल में ऐसा अभ्यास करने से भी प्राण स्पंध रोका जाता है बारम्बार वृत्ति व्याप्ति करने से फल व्याप्ति स्वतः हो जाती है अभ्यास करके प्राणायाम होता है और वैराग्य की दृढ़ता करके वासनायाम होता है अर्थात् वासना रुक जाती हैं तिसि क्षण मोक्ष हो जाता है। अब लक्ष्मी देविका प्रश्न सुनों।

प्रश्न—लक्ष्मी उवाच। हे भगवन् सम्यक् वृति ज्ञान किसे कहते हैं।

उत्तर—हे माता जी सुनिये घट पटादिक सर्व पदार्थों विषे चेतन संवित को विषय करने वाली वृत्ति सम्यक वृत्ति कही जावे है इस सम्यक वृत्ति के ही अभ्यास करके मोक्ष होता है।

हे देवि—जैसे यात्रा मार्ग में प्रेम वस किसी से मिलाप हो जाय और मन की वृत्ति ममत्व करके स्नेह करे तो प्रसन्नता होती है फिर वियोग होने से दुःखो होता है वास्तव संयोग वियोग सब भ्रांति हैं।

तैसे ही यथार्थ से सुख दुख हर्ष शोककादि सब मन के धर्म हैं? अज्ञानी मूर्खता कर औरों के धर्म अपने में मान लेता है तिसकर तपायमान होता है।

जैसे इन्द्रिय साक्षी होकर विषयों को ग्रहण करती हैं तैसे चित्त भी अहंकार रहित साक्षी होकर स्वरूप का ग्रहण करे तो राग द्वेषादि कर तपायमान न होवै रे मूर्ख मन तू ज्यों २ विषयों की ओर धावता है त्यों २ दुखी होता है और मिथ्या

अहंत्वम वासना करके अनात्म पदार्थों को विषय करता है याते तेरा आत्मा से सम्बन्ध कैसे होवे तू असत जड़ है और मैं आत्मा सत्‌चित् आनन्द रूप हूं। इस लिये तू मेरी आज्ञा का पालन कर अनात्म वृतियों का त्याग करदे जिस करके तेरा जीवत्व भाव जाता रहेगा आत्माकार वृत्ति करके मुझको प्राप्त होगा अन्यथा नहीं होगा यह निश्चयार्थं जानना चाहिये हे देवि विचार देखो कि जिन २ विषयों की तुम इच्छा करती हो प्रथम अमृत की नाईं भाषते हैं फिर तिनके वियोग कर जलती हो तब विष की नाईं होजाते हैं ताते तुम सर्व इच्छाओं का त्याग करके निरच्छित हो जाओगी तो आत्मदेव तुम्हारे पर अत्यंत प्रसन्न रहेगा और तुमको दुःख भी न होगा समझलो तुम्हारा कर्तृत्व भोक्तृत्व अभिमान भी विना मुझ चेतन देव शक्ति के सिद्धि न होगा जब तुम्हारा भिन्न भाव न रहेगा तब चिदात्म ही भावेगा क्योंकि आत्मा से अन्य पदार्थ असिद्धि हैं याते आत्मा ही सर्वव्यापक है तुमभी आत्मा हो मैं भी आत्मा हूं।

यह सर्व दृश्य आत्मा का ही चमत्कार है द्वैत कुछ नहीं जो द्वैत भ्रम है सो ही भ्रांति कही जाती है सो भी अधिष्ठान से भिन्न कोई वस्तु सिद्धि होती नहीं। हे देवि—यह सर्व जगत ब्रह्म स्वरूप ही है यही मुख्यार्थ जानना। हे मातेश्वरी, जिस को कल्याण की इच्छा होवे तिस को एक आत्म परमात्म परायण होना योग्य है जब स्वरूप को त्याग कर संकल्प की ओर धावता है तब दुःखों के समूह को प्राप्त होता है। और जब उन से ग्लानि होती है तब कहता है कि—हे भोगो तुम्हारी लालसा करके मुझ को परम पद का विस्मरण हो गया था जैसे

माता अपने सुख के निमित्त पुत्र की लालसा करती है तैसे मैं सुख जान कर तुम्हारी लालसा करता था अब जाओ तुम को मेरा नमस्कार है क्योंकि अब मैं निर्वाण पद को प्राप्त हुआ हूं। हे दुःख तुम को भी हमारा नमस्कार है। आप की कृपा करके ही अब आत्मपद पाया है।

हे मातेश्वरी—इस संसार विषे ज्ञान बिन जीवन असार है क्योंकि जिस का संयोग है तिस का वियोग भी है। अध्यात्मादि दुखों ने मेरे साथ बड़ा उपकार किया कि अपना नाश कर के मुझे सुख दिया इस लिये उन को भी नमस्कार है, हे मोह तृष्णादिक तुम को भी नमस्कार है जैसे माता अजान बालक का कभी त्याग नहीं करती तैसे तुम ने भी मुझे कभी नहीं त्यागा था, अब तुम्हारे उपकार से ही सुखी हुआ हूं आप भी कृपा कर के जल्द पधारिये। हे देह इन्द्रियादिक प्राणों हम से सत्ता पाकर मन की आज्ञा में तुम भी खूब चली थी ताते हमारा तुम्हारा वियोग भी सुख का हेतु हुआ अब तुम को भी नमस्कार है।

हे मातेश्वरी—अहंकार का कथन वाणी का अविषय होने से विलक्षण है उस ने भी अहं अहं बिल्ली का सा शब्द कर के दूध मलाई तो खूब उड़ाई किन्तु अपना मुख्य कार्य्य कुछ न किया वृथा अनात्म हांड़ियों को चाटता फिरा (अर्थात्) अपने अहं स्वरूप का किंचित विचार न किया कि मैं कौन हूं। वास्तव से (अहं ब्रह्मास्मि) इस वेद श्रुति प्रमाण करके मैं जो चेतन ब्रह्म हूं ऐसा न जाना अस्तुः अहंकार से आदि लेकर सर्व दृश्य माया के कार्य जड़ हैं ताते मेरा उनका सम्बन्ध

कैसे बनें अतः उन को भी नमस्कार है। हे मातंगी—विहितादि कर्म आत्मा को स्पर्श नहीं करते क्योंकि आत्मा सर्वज्ञ है और कर्मादि अल्पज्ञ हैं। इस लिये हे माता जी तुम शोक मत करो और जो वेदविदित ज्ञान है उसे विचरो और जीवन मुक्ति का आनन्द लो अपने लक्ष्मी नाम को यथार्थ सफल करो तुम को हमारा आशीर्वाद है।

दीवान उवाच--प्रश्न—हे प्रभो तप का फल क्या है ?

उत्तर—हे अनघ आप अज्ञान रूप निद्रा से जागो और ध्यान देकर सुनों अणिमादिक सिद्धियां तप का फल है परन्तु जीवन मुक्त ज्ञानी को उनकी इच्छा नहीं क्योंकि जेते कुछ लाभ है सब से आत्म लाभ परे है और सब लाभ तुच्छ हैं या ते ज्ञानी को इच्छा नहीं। हे प्यारे—सम्वित जो चेतन फुरना है तिस को अन्दर रोकना आनन्ददायक है शुद्ध सम्वित विषे अहं फुरना ज्ञान रूप है और अशुद्ध विषे अहं फुरना अज्ञान रूप है ज्ञान अज्ञान दोनों ही अन्तःकरण वशिष्ट चेतन अर्थात् प्रमाता के धर्म हैं।

अन्तःकरण उपहित चेतन के नहीं क्योंकि उपहित चेतन के स्वरूप विषे धर्मी प्रतियोगीपना नहीं है याते साक्षी कहा जावे है और अन्तःकरण वशिष्ट चेतन को प्रमाता जीव कहते हैं जिसका साक्षी के साथ बोध समानाधिकरण है मुख्य समानाधिकरण नहीं हैं इस वास्ते ज्ञानादि धर्म अन्तःकरण वशिष्ट चेतन के हैं साक्षी स्वयम ज्ञान स्वरूप है।

हे अनघ—अब आप संसार से वैराग्य कर जागो मैं आपसे अंतिम मुख्य सिद्धान्त कहता हूं कि विषय वासनाओं

से वैराग्य और वासनाक्षय—मनो नाश—तत्व ज्ञान इन तीनों के अभ्यास किये से पुरुष प्रयत्न सिद्धि होता है अर्थात मोक्ष होता है यही प्रथम के पांच प्रकरणों विषे वसिष्ठ जी का सारांश है इसको विचार कर ज्ञानवान इस जगत विषे जीवन मुक्त सुखी हैं और अज्ञानी मृतक समान दुखी हैं। इसी शरीर से दुःखादि निवृति के लिये मुक्त होने का तुरंत प्रयत्न करो।

प्रश्न—हे दीवान—आपको यह सिद्धान्त सुन कर कुछ आनन्द हुआ या नहीं।

उत्तर—हे भगवन आपके अनुग्रह से स्वरूपानन्द का चमत्कार तौ हुआ परन्तु स्वरूपानु संधान करके निर्वाण पद को अभी नहीं प्राप्त हुआ इस वास्ते आपसे प्रार्थना है कि निर्वाण प्रकरण के अन्तिम सारांश सिद्धांत को श्रवण कराइये।

प्रश्न—हे प्रिय अर्ध प्रवुद्ध—निर्वाण का समस्त सारांश ग्रन्थ विस्तार भय से नहीं कह सकते क्योंकि बहुत विस्तार समाधि रूप से श्रीवसिष्ठ जी ने कहा है।

उत्तर—हे दीनबन्धु—मेरे बोध के निमित अंतिम सिद्धांत सूक्ष्म रीति से कहिये।

प्रश्न—हे प्रिय दर्शन—श्रद्धा से सुनो।

उत्तर—कुतर्क नहीं करना कि यह अर्थ रह गया वा यह विशेषक थोड़े में ही सारांश ग्रहण कर लेना।

प्रश्न—हे प्रभो—निर्वाण प्रकरण में कितने सर्ग हैं?

उत्तर—हे प्रिये समस्त निर्वाण में २८६ सर्ग हैं एक सर्ग से एक प्रश्न लें तौ २८६ प्रश्न और हो जावेंगे। ऐसा

विस्तार नहीं चाहते इस लिये ग्रन्थ की समाप्ति में मुख्य सिद्धांत कह देंगे जैसा तुम प्रश्न करोगे ।

प्रश्न—हे स्वामिन् ! तुरिया पद किसे कहते हैं ?

उत्तर—जब बोध विषे दृढ़ स्थिति होती है सो ही तुरिया पद है इसी को क्षीण जाग्रत कहते हैं जब इस पद को जिज्ञासु प्राप्त होता है तब परमानन्द की प्राप्ति होती है जिस का मन उपशम भाव को प्राप्त हुआ है सो पुरुष मौनी हैं अंतःकरण परम शान्ति रूप अमृत करके तृप्त है सो ही ज्ञानवान निर्वाण पद को प्रप्त हुआ है ।

प्रश्न—हे भगवन् । निर्वाण स्वरूप आत्मा विषे अनात्म अहंकार कैसे फुरया है ?

उत्तर—हे दीवान—आत्मा निर्गुण है और ज्ञान स्वरूप है चिदाभास जीव ने अविद्या के तादात्म सम्बंध कर अहंकार मिथ्या कल्पा है मिथ्या पदार्थ अपने अधिष्ठान से भिन्न होता नहीं और आत्मा निरुपाधि अद्वैत है अविद्या के तादात्म सम्बन्ध से सोपाधिक जीव को ही अहंकार फुरना हुई है आत्मा निरहंकार ज्यों का त्यों है। हे कँवल नयन ! आत्मा के अज्ञान कर के अहंकारादिक जगत भापता है स्वप्न की नाईं और आत्म ज्ञान काल विषे जाग्रत की नाईं जगत भ्रम निवृति हो जाता है वास्तव आत्मा निरहंकार है ।

प्रश्न—हे मुनीश्वर—जो पुरुष परमात्म रूप इष्ट की प्राप्ति को त्याग कर अन्य अनित्य पदार्थों की इच्छा करते हैं उनकी क्या गति होती है ?

उत्तर—हे प्रियवर—जो निरंतर परमात्म प्राप्ति का यत्न

नहीं करते निकृष्ट वासना से वे नरक से नरकान्त को जाते हैं उन की इस लोक वा परलोक में दुर्गति होती है सद्गति नहीं होती और आत्महत्या का पाप लगता है इस लिये सर्व मनुष्य मात्र को प्रथम अवस्था से ही ईश्वर का भजन करना मुख्य धर्म है गोस्वामी तुलसीदास जी साक्षी हैं ।

चौपाई—सकल सुकृत कर यह फल भाई ।
भजिय राम सब काम विहाई ।।

प्रश्न—हे प्रभो—सिद्धांती कहते हैं कि आत्मा सब को अनुभव प्रत्यक्ष है इस बात को अज्ञानी क्यों नहीं मानते हैं ?

उत्तर—हे भाई—अज्ञानियों को अविद्या के वल से जगत का अनुभव ही दृढ़ हो रहा है अत्मा का नहीं देखो अत्मा की सत्ता विना जंगत कहां वास्तव ब्रह्मात्मा प्रत्यक्ष ही है अस्ति भाति प्रिय रूप से तो भी अज्ञानी अंध को अप्रत्यक्ष की नाईं है जैसे प्रत्यक्ष सूर्य को उल्लू पक्षी अप्रत्यक्ष की नाईं अनुभव कर्ता है तैसे अज्ञांनी प्रत्यक्ष आत्मा को उल्लू की तरह हट कर के अप्रत्यक्ष मानते हैं इस बात के न मानने में अज्ञान कारण है ।

ज्ञान कर के जब अज्ञान का नाश होवे तभी पंच क्लेशादि की भी निवृत्ति हो जावेगी ।

प्रश्न—हे भगवान्—जनकादि ज्ञानियों की सभा में मैंने श्रवण किया है कि नेत्र के खोलने मूंदने में यत्न है पर मोक्ष होने में कुछ यत्न नहीं यह बात मैं नहीं समझा वह मोक्ष का क्या साधन है सो कहिये ।

उत्तर—हे दीवान— वहिर्मुख वृति बंधन का कारण है

और अंतर मुख वृत्ति मोक्ष का कारण है।

याते निर्वासनिक सुषुप्ति की नाईं होवे जब निर्वाण पद अथवा शान्ति निर्विकल्प पद को प्राप्ति होगा मोक्ष के और साधन आगे लिखेंगे वहां से विचारना चाहिये।

प्रश्न—हे प्रभो—वृत्ति किसे कहते हैं?

उत्तर—अंतःकरण व अविद्या के परिणाम को वृत्ति कहते हैं। सो वृत्ति वहिर्मुख हुई प्रातिभासिक असत पदार्थों को विषय करती है और अंतर मुख हुई सत परमार्थ पदार्थ को विषय करने वाली होती है सो वृत्ति केवल अज्ञान का परदा (अर्थात् आवरण को भंग करती है यही विषय करना है वास्तव ब्रह्मात्म स्वयम् प्रकाश है वृत्ति का विषय नहीं है।

प्रश्न—हे स्वामिन—सिद्धांती अपने को शिवो हम् कहते हैं सो शिव क्या है और शक्ति क्या है?

उत्तर—सर्व जीव निरूपाधिक सम्वित शिव तत्वरूप है और चित्त शक्ति है आत्म शिव शक्ति और चित सम्वेदन विषे कुछ भेद नहीं जब यह चित शक्ति शिव पद विषे लीन हो जाती है तभी आत्म तत्व के साथ तद्रूप होजाती है एक अद्वैतरूप रह जाता है आत्म पद पाये ते अनात्मपद की भावना मिट जाती है तब शिवोहम् पद ही शेष रह जाता है।

हे रामजी—सर्व सृष्टि आभावरूप है और सर्व का आश्रय अधिष्ठान ब्रह्मसत्ता हैं सो ही ब्रह्मसत्ता स्वरूप के अज्ञान से जगत रूप होकर भाषती है इस से ब्रह्म और जगत में कोई भेद नहीं है।

प्रश्न—हे प्रभो—इस संसार विषे शूरमा कौन हैं?

उत्तर— हे दीवान—प्रजापति से आदि लेकर मनुष्य राज ऋषि ब्रह्म ऋषि नागादि जो जीवन मुक्त होकर विचरे हैं सो ही शूरमा कहलाये हैं वा निष्काम विरक्त चित्त वाले महात्मा पुरुष शूरमा अब भी दृष्टि गोचर हैं और जो राज्यादि की प्राप्ति रूप कामना करके युद्धादि कर्म करते हैं सो शूरमा नहीं वे तो अर्थी पुरुष कहे जावे हैं ।

प्रश्न—आत्म अनुभव सत्ता अस्तिरूप है या नास्ति रूप है ?

उत्तर—प्रियवर—जो आत्म अनुभव सत्ता न होवे तो अस्ति नास्ति को कौन अनुभव करे याते अनुभव कर्त्ता साक्षी अस्ति, भाति, प्रिय, रूप से नामरूप नास्ति का अनुभव कर्त्ता ही अस्ति रूप से कहा गया है ।

प्रश्न—हे भगवन्—जिनको आत्म साक्षात्कार हुआ है उनका क्या लक्षण है ।

उत्तर—हे सौम्य—ज्ञानवान विषे भी हर्ष शोक काम क्रोधादि दृष्टि आते हैं परन्तु निश्चय उनका आत्म स्वरूप विषे होता हैं पुत्रादि पदार्थों को अनित्य जानता है जैसे वायु को राग द्वेष स्पर्श नहीं करता तैसे ज्ञानी पुरुष को राग द्वेष जल कँवलपत्रवत् स्पर्श नहीं करते वाह्य अज्ञानी की नाईं व्यवहार करता है परन्तु अंतर शान्ति रूप है आत्मा विषे जिस का अहम् प्रत्यय दृढ़ हो रहा है सो अज्ञानी की नाईं विचरै वा बालवत् नाना क्रिया करे तौ भी उसको अपने अकर्तापने का निश्चय सो अनाचारी कहा जावै है यह सामवेद का सिद्धान्त है ।

हे प्यारे—जब तुम को स्वभाव सत्ता का अनुभव साक्षात्कार होगा तब जितना कुछ द्वैत जगत भापता है सो सब शान्ति हो जावेगी केवल आत्म तत्व मात्र ही सर्वत्र भापेगा तब आनन्द होगा और परमानन्द की प्राप्ति विषे सदैव मग्न रहोगे।

प्रश्न—हे भगवन् जब आप कहते हो कि तू ब्रह्म है तब यह दृष्टा-दर्शन-दृश्य-त्रिपुटो क्यों प्रतीत होती है ?

उत्तर—यह दृश्य सब अदृश्य ब्रह्म स्वरूप है ब्रह्म वेत्ता ऐसा कहते हैं जैसे स्वप्न सृष्टि अकारण भापती है वा मरुस्थल विषे मिथ्य जलाभाष भाषता है तैसे मुझ ब्रह्मात्म के स्वरूप अज्ञान करके भ्रांति से सोपाधिक त्रिपुटी भाष आई है वास्तव से निरूपाधि ब्रह्म में ज्यों का त्यों निर्गुण स्वरूप हूं माया के तादात्म सम्बन्ध से भ्रांति कर जगता भाष हुआ है रज्जू सर्प वत् सो मिथ्या जान अतः सर्वत्र मेरा ही स्वरूपानुसंधान ज्ञान है।

प्रश्न—हे प्रभो—आप यह कहो कि वाह्य दृश्य अंतर किस प्रकार प्रवेश करके भापती है ?

उत्तर—हे साधो ! अनुभव आत्म ज्ञान सत्ता सर्वत्र समान है जैसे दर्पण विषे जैसा आभाष पड़ता है तैसा ही स्वरूप भापता है तदनुसार अन्तःकरण विषे वाह्य पदार्थों का आभाष प्रवेश कर जाता है तैसा ही स्वरूप भाषने लगता है। वास्तव से यह सर्व जगत आत्मा का चिदा भास विवर्त रूप होने से असत्ता भाष है और। आत्म चेतन संचित स्वयम सत्ता भाष है सो ही ज्ञान शक्ति है स्वरूप ज्ञान की प्राप्ति ही मोक्ष

कही जावे है।

प्रश्न—हे प्रभो—आप के अमृत रूपी वचनों को सुन कर तृप्ति नहीं होती और ग्रन्थ का विस्तार हुआ जाता है याते अब कुछ ज्ञान का विषय ज्ञेय वस्तु साधनों सहित कह कर समाप्त करो।

हे भगवन्! श्रवण किसे कहते हैं?

उत्तर—हे अनघ! षटलिङ्ग रूप युक्तियों से सम्पूर्ण वेदान्त वाक्यों का तात्पर्य अद्वितीय ब्रह्म विषे निश्चय श्रवण कहिये है।

प्रश्न—षटलिङ्ग कौन से हैं? उत्तर—१ उपक्रम उप संहार २ अभ्यास ३ अपूर्वता ४ फल ५ अर्थावाद ६ उप पतिः ये षटलिङ्ग कहे जावे हैं।

प्रश्न—मनन और निदि ध्यासन किसे कहते हैं?

उत्तर—अनेक युक्तियों कर के अद्वितीय ब्रह्म का चिंतन ही मनन कहा है और अनात्माकार वृतियों का त्याग आत्माकार वृत्ति की स्थिति ही निदिध्यासन कहा जावे है? श्रवण से प्रमाण गत संशय दूर होवे है और मनन से प्रमेय गत संशय निवृत्ति होवे है यह दोनों संशय मिल कर असंभावना कहिये है और निदि ध्यासन करने से विपरीत भावना का नाश होवे है निदिध्यासन की परिपक्व अवस्था को ही समाधि कहते हैं सो संन्यासी का नित्य कर्म कहा है।

प्रश्न—हे प्रभो—संन्यास किसे कहते हैं और कितने प्रकार का है?

उत्तर—हे सौम्य—विहीनां कर्मणां विधिना परित्यागः स संन्यास (संन्यासस्य श्रवणं कुर्यात्)।

श्लोक—नित्य कर्म परित्यज्य वेदांत श्रवणं विना ।
वर्तमानस्य संन्यासी पतत्येव न संशयः ॥

संन्यासी को वेदांत का श्रवण अपरोक्ष ज्ञान होने के पश्चात् भी असंभावना वा विपरीत भावना निवृति और दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान की प्राप्ति के लिये अवश्य करना चाहिये क्यों कि कर्म संन्यासी वेदांत श्रवण विना अवश्य ही पतित होगा ।

संन्यास चार प्रकार का कहा है—१ कुटिचक, २ बहुदक, ३ हंस, ४ परमहंस । इनका भेद विस्तार से तत्वानुसंधान विषे देखो पण्डित पीतांबर जी ने लिखा है ।

प्रश्न—ईश्वर प्रणिधान किसे कहते हैं ?

हे व्यास सूत्र—ईश्वर प्रणिधान द्वा, ईश्वरं का वाचक (प्रणव) ओंकार शब्द है ताके चिंतन का नाम ईश्वर प्रणिधान कहा जावे है ।

श्लोक—सकारं च हकारं च लोपयित्वा प्रयोजयेत् ।
संधि च पूर्वरूपाख्य ततौ सौ प्रणवो भवेत् ॥

अर्थ—सोहम् इस वाक्य विषे (स) कार को तथा (ह) कार को लोप कर के (ओम्) इस प्रणव शब्द का अर्थ भी सो मैं परमात्मा हूं यह सिद्धि हुआ याते सोहम् शब्द की नाईं (ओम्) इस प्रणव शब्द का अर्थ भी मैं परमात्मा हूं यह सिद्धि हुआ इस प्रकार जीव ब्रह्मात्व का एकत्व चिंतन ही ईश्वर प्रणिधान है इस अधिकारी पुरुष ने समाधि के उत्पत्ति पर्यंत (प्रणव) ओम् मन्त्र के जप का परित्याग नहीं करना

किंतु अन्यथा वाक् व्यापार से रहित होना वाणी का निरोध ही समाधि कही है सो चित्त वृति रूप निरोध समाधि योग तत् त्वम् पदार्थं के शोधन से भी होवे है अतः श्रवणादि अन्तरङ्ग चतुष्ट साधन ब्रह्माकार वृति के साक्षात साधन हैं।

श्लोक—मन सो वृतिं शून्यस्य ब्रह्माकार तयास्थिति।
असंप्रज्ञात नामासौ समाधिरभिधीयते॥

अर्थं—जिस का मन सर्वं वृतियों से शून्य और ब्रह्माकार रूप वृति से स्थिति है सो असंप्रज्ञात समाधिस्थ है सो समाधि पर वैराग्य वा ईश्वर प्रणिधान से प्राप्ति होवे है।

हे प्रिय—गोस्वामी तुलसीदास जी कृत वाक्य सुनिये।

दोहा—यह कलि काल मलाय तन मन कर देख विचार।
श्रीरघुनायक नाम तजि नहिं कछु आन अधार॥

चौपाई

सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगलमूल अमंगल दवनू॥
जो सेवक स्वामिये संकोची। निजहित चहे तासु मति पोची॥
जिनते मुनि तापस दुख लहहीं। वे नरेश विन पावक दहहीं॥
साधु अवज्ञा कर फल जैसा। जरे नगर अनाथ कर वैसा॥
वचन परम हित सुनत कठोरे। कहहिं सुनहिं जे नर जग थोरे॥
जो बालक कछु अनुचित करहीं। गुरु पितु मात मोद मन धरहीं॥
नर तनु पाय विषय मन देहीं। पलट सुधाते शठ विष लेहीं॥

दोहा—जो न तरहिं भवसागरहिं, नर समाज असपाय।
सो कृत निंदक मंद मति, आतम हनगत जाय॥

चौपाई

प्रभु माया बलवंत भवानी। जाहि न मोह कवन असज्ञानी॥

सो माया सब जगहि नचावा। तासु चरित लखि काहु न पावा॥
जो ज्ञानिन कर चित अपहरहीं। बरि आई विमोह वश करहीं॥
तेहि विलोकि माया सकुचाईं। करि न सकहिं कछु निज प्रभुताईं॥

दीवान उवाच—हे मुनीश्वर आपके अमृत रूपी वचनों कूं श्रवण करके कृतकृत्य हुआ जन्म मृत्यु के भय से रहित आत्मपद को प्राप्त हुआ हूं आत्म ज्ञान से अधिक और संपदा कोई नहीं आपकी कृपा से अब मैं अनात्म अहंकार का त्याग करके स्वयम शुद्धात्मक हुआ निर्विकार स्वरूप पद विषे शांति को प्राप्त हुआ हूं हे भगवन् आपके इस उपदेश से मैंने अत्यन्त विचार कर अनुभव किया है कि राज्यादि विषय भोग दुःख का ही कारण है इन भोगों करके सुखी कोई नहीं हुआ केवल आत्मज्ञान करके ही सर्व दुखों की अत्यन्त निवृत्ति और परमानन्द मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है।

प्रश्न—हे प्रभो—आत्म ज्ञान क्या है?

उत्तर—हे दीवान आत्म ज्ञान सो यही है कि अपने आपको (अहं ब्रह्मास्मि) इत्यादिक महा वाक्य द्वारा ब्रह्मात्म स्वरूप जानना कि मैं ब्रह्म हूं न कर्ता हूं न भोक्ता हूं न देह हूं न मेरा देह है सम्पूर्ण कर्म क्रिया देह इन्द्रिय मन बुद्धि प्रकृति करें हैं मैं निष्क्रिय आत्मा एक रस ज्यों का त्यों नित्य हूं इस प्रकार के दृढ़ निश्चय का नाम आत्मज्ञान है सो ही मोक्ष का उपाय वेदों में कहा है। प्रथम हम लिख आये थे कि शांति मोक्ष का उपाय आगे लिखेंगे सो हमने यहां ऊपर लिखा है विचार लेना चाहिये।

प्रश्न—हे भगवन्—निज गुरुदेव जी का जीवन चरित्र

सुनाकर ग्रन्थ प्रश्नोत्तरी समाप्त कीजिये।

उत्तर—हे सोम्य—गुरु महिमा अपार है तौ भी यथा मति कुछ कहता हूं ध्यान देकर श्रवण करो।

श्रीगुरुदेव जीवन चरित्र महिमा

छंद—अवतार श्रीशंकर महोदय ज्ञानदाता जानिये,
श्री अष्ट ऊपर एक सतगुरु तत्व वित्त कर मानिये।
उपदेश विद्या ब्रह्म का देकर कृतारथ जग किया,
जगदात्म भेद लखाय कर भव पार सेवक को किया॥

सोरठा—नाम अच्युतानन्द मम गुरु दीन दयाल का।
जग कह परमानन्द लखे नारायण तिनहिं॥

छंद—जिमि कृष्ण गोकुफ अवतरे भूभार टारन के लिये,
भये राम धाम अयोधिया निश्चर संहारन के लिये।
तिमि रामपुर नगला निवासी ब्रह्म कुल जन्मे प्रभू,
है धरणीधर तट वेसवां मैं हाल जिनका अब कहूं॥

छंद—है वाणी का यदपि करना प्रशंसा देव की,
विद्वत्ता च विरागता शुचि श्रेष्टता प्रभु भेव की।
रज धारि नख पद कमल की अष्टांग दंड प्रणाम कर,
आत्म अलख जिनने लखाया तत्वमसि को लक्ष कर॥

सोरठा—जलनिधि भव से पार किया नैन की सैन सों।
क्रूर कुबुद्धि लबार मुझ से पापी दीन को॥

छंद—मुझ दीन से अतिरिक्त भी तारे अनेकों जीव जग,
ब्रह्म विद्या दान दो दीना लखा मुक्ती का मग।
यश छा रहा नभ भूमिरवि शशि नखत पर्वत जलधि लों,
वह परम पुरुष अखंड पहुंचे मुक्त पद की अवधि लों॥

सोरठा— स्वामी स्वात्मानन्द सेवक दीन दयाल के।
सर्वज्ञत् आनन्द अद्भुत पुरुषारथ किये ॥

चौपाई

धरनी धर पर मन्दिर साजा। जिहि लखि इन्द्र भवन हूं लाजा ॥
तामहं गुरुदेव के दरशन। दर्शक करहिं मुदित मन परसन ॥
निर्भय नन्द वड़े गुरु देवा। पूजहिं तिनहिं करहिं जन सेवा ॥
होहिं आरती मन्दिर मांहिं। सेवत सेवक मुदित सिहाहिं ॥
वीणा पणव शंख धुनि होई। यह रहस्य जानहिं कोई कोई ॥

सोरठा–बारहिं बार प्रणाम, जो सेवक गुरुदेव के ॥
तन मन धन सब काम, गुरु हित जिन अरपण किये ॥४॥

छन्द–भादों शुदी षष्टी प्रबल उत्सव तहां होवे सही।
प्रति साल प्रेमी भक्त गुरु के सर्व मिलि आवैं वहीं ॥
सेवक ग्रहस्थी जे तरे उपदेश गुरु का श्रवण कर।
वर्णन करूं मैं नाम उन सुनि लीजिये अब ध्यान धर।

सोरठा–रामचन्द्र हिंडोल वेदराम जी सरसिंह।
बाबूसिंह श्रीराम रामसिंह जसवन्तसिंह ॥

चौपाई

गिरिप्रसाद जटवार निवासी। लक्ष्मीनारायण सुख रासी ॥
नौबतसिंह दरोगा जानो। जेष्ट भ्रात मक्खनसिंह मानों ॥
शेरसिंह मनफूल दिवाने। सीताराम जौहरी स्याने ॥
परमारथ मग जिन सब सोधा। गुरु सेवक अनन्य जिमि योधा ॥

चौपाई

बाबूलाल अहहिं पटवारी। तेजपाल बहु इच्छा चारी ॥
प्रभूसिंह नरपतिसिंह जाना। जो अनन्य सेवक परधाना ॥

कुन्दनसिंह झगीरी लाला। कुंवरपाल जी भक्त रसाला ॥
जाहरसिंह बलवन्तसिंह दोऊ। नत्थासिंह झम्मनसिंह सोऊ ॥
परमारथी वीर प्रभु सेवक। गुरु तजि सेवक आनन देवक ॥
करनसिंह प्रभुसिंह अमाने। तिनके करतब को जग जाने।
रामलाल जी भक्त सुलोचन। गुरु सेवत किये पाप विमोचन ॥
धर्मसिंह लीलाधर दोऊ। लाल गनेशी सम नहिं कोऊ ॥

सोरठा—नन्दराम द्रुजपाल लिये गजाधर गजकर।
खुस हाली खुस हाल छेदालाल दयालु पुनि ॥
सामल दाताराम सेवक संतो के सुवस ।
श्रीनर उत्तम स्वामि खोले हृदय कपाट उन ॥

दोहा—नत्थासिंह माती रहे, गुरु सेवक पर वीन।
निज आत्म को तिन लखा, नर तनु का फल लीन ॥

छंद—हैं भक्त सेवक नाथ के उपमा कहूं कहां तक सही।
व्यवहार बुद्धि से सबा के नाम भी जानत नहीं ॥
नहिं अन्त कोमल चित्त कृपालु राग रहित अनूपजे ।
संसार विच ज्यों वालवत सीतल सुशान्ति सरूपजे ॥६॥
अभ्यास सत उपदेश श्रवण सुनावने का प्रबल था ।
सत्संग में नित सेवकों की सुरुचि रखना अमल था ॥
गो स्वान पण्डित मूर्ख बालक एक दृष्टि निहारते ।
चांडाल द्विज बाला सबहिं विक्षेप रहित सम्हारते ॥
श्लोक—विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पंडिता सम दर्शिनः ॥ ५-१८ ॥
छंद—बांध मंडल विचारना उनको न भाया तनिक भी ।
भंडार करना औ कराना गुरु में न पाया क्षनिक भी ॥

निंदा का करना अरु कराना यह विचारों में न था।
धर्म मारग में लगा जन पार करना धर्म था ॥८॥

सोरठा—गुरु के चरित अनंत गो गोचर मन से परें।
गावहिं सुनहिं सो संत, सेवक गुरु पद भव तरहिं ॥

दोहा—पास सोमना खिदर पुर, वे गुरु ज्ञानी वीर ॥
सम्वत चौरासी विषे, स्वामी तजा शरीर ॥३॥

कवित्त—खिदरपुर प्रशादीलाल द्वारिका प्रसाद वे तौ वौह रे महेश्वरीनु जन्म लौ सुधार है ॥ गंगा तट जाय कीनी क्रिया कर्म वेद रीति। धन्य है धनेष शिष्य लीना यश अपार हैं ॥ कीना भंडारा अन्नदान हूं अपार किया। धन्यवाद शिष्य मंडलीह ली सुधार है ॥ अन्य शिष्य गुरू भाई इच्छा ही करत रहे। करिकें कर्तव्य लेहे फल वे शुमार हैं ॥

दो०—जिज्ञासू जन हृदय में, इच्छा करत रहे।
अंतिम दिन के समय पर, दर्शन नाहिं भये ॥

प्रेमी सखा

छन्द—हैं योगीराज वसिष्ठ सम मौनी मुनी सब सुःखदा।
वे कृष्ण सम हैं पूज्य मम जे दीन रक्षक सर्वदा ॥
रहे मौन उझयानी वरष बारह लों दारुण तप किया।
सम जान श्री दामा मुझै अपनाय निर्भय कर दिया ॥६॥

सो०—कृष्ण पुरी निजधाम, मेरे सखा विचित्र का।
ध्यान करूं वसु याम, तिनके चरित पवित्र को ॥८॥

मम जीवन

दो०–मम जीवन भी क्या कहूं, वृथा रम्यो संसार ।
ग्रह के झगड़े में फंसा, गुरु ने कीया पार ॥५॥

छन्द–मम जन्म भूमि प्रांत अरगल पुर दिशा पश्चिम में है ।
है नाम अमृत पुर विषै विष नाश कारक सत्य है ॥
गुरु देव ने कीनी कृपा तम हर लखाया सत्य है ।
सब टाल जग जंजाल व्याल कराल पाया तत्व है ॥१०॥

सो०–तब विचरयो ग्रह त्यागो सिखा सूत्र धारण किये ।
जगन्नाथ पग लागि वद्री नारायण गयेउ ॥६॥

छन्द–करि तीर्थ सेवा अष्ट वर्ष विसिष्ठ विचरयो गंग पर ।
हरिद्वार धायो नर्मदा सत्संग परम उमंग कर ॥
पुनि जानि जिज्ञासु गुरू उपदेश यों लागे करन ।
मोहि ग्राम गुरु सेना बुला संन्यास वृत धारन धरन ॥११॥

सो०–गुर सेना गुरु देव वेद राम आचार्य्य कर ।
विधिवत करि सब नेक नाम कर्या मेरो कियो ॥१०॥

छन्द–पुनि नाम शान्ता नंद है गुरुदेव जू के दास का ।
ठाकुर प्रभुसिंह कार्य कर्त्ता क्षात्र धर्म विकाश का ॥
है धन्यवाद अनन्त आशिष सर्वदा आनँद रहैं ।
हों भक्त मुक्त अनन्य पद वहु ज्ञान आत्म का रहै ॥१२॥

दो०–शिषा सूत्र का त्याग कर गयो द्वारिका धीश ।
रामेश्वर विचरयो वहुरि, थाप्यो जहां गिरीश ॥६॥

राम–वाक्य

चौपाई

जो रामेश्वर दर्शन करि हैं । सो तनु तजि मम धाम सिधारे हैं ॥

जो गंगाजल आनि चढ़ाइहिं । सो साज्युज्य मुक्ति नर पाहिं ॥५॥

छन्द—काशी अयोध्या दर्श करि सत्संग मन वच कर्म से ।
पुनि प्रयाग राज विचित्र कुम्भी कुम्भ ध्याये भ्रम से ॥
फिरि कृष्ण पल्ली रंग जो दर्शन किये मुनि जनन के ।
सुनि तत्व ज्ञान अमान हो खोजन चल्यो मग रतन के ॥१३॥

दोहा—देखे शहर विचत्र बहु कछु न पाया सार ।
भ्रांति जाल भटकत फिरा किया गुरु ने पार ॥७॥
राज रजबाड़े गया पुष्कर जाया न्हाय ।
ब्रह्मा नन्द कविता सुनी हिय आनन्द उम गाय ॥८॥

सोरठा—रमें जहां श्रीराम, सीता लक्ष्मण भ्रात सह ।
परम रम्य शुभ धाम, गयो चित्र कूटहिं बहुरि ॥११॥

दोहा—तीरथ बहु मैंने किये, नीम सार ले आदि ।
ऋषियों के दर्शन भये, यह थल कहिय अनादि ॥
परिक्रमा ब्रज की करी, भेंटे कृष्ण मुरार ।
आनन्द से विचरत रहूं, और न जानू सार ॥१०॥

चौपाई

जीवन मुक्त महा मुनि ज्ञानी । उग्रानन्द पूर्ण विज्ञानी ॥
ब्रह्मान द अनन्तानन्दहु । ईश्वरानन्द स्वरूपानन्दहु ॥
मोजानन्द परमारथ जाना । धन्य जन्म दर्शन करि माना ॥
चौदह वर्ष कियो सत्संगा । जिहि ते भयो मोह मद भंगा ॥

छन्द—गुरु आदि यति योगी महर्षि ब्रह्मचारी सिद्धि सब ।
गंधर्वदेव तपो निधी ब्राह्मण यशस्वी वीर सब ॥
संन्यास पंथाई तपस्वी पतिब्रता अवतार जे ।
शिव विष्णु ब्रह्मा वेदपाठी यम सुदामा नाम जे ॥१४॥

दिगपाल दिशि अरु विदिशि के सब धर्म राज कुवेर भी।
श्रुति वेद शास्त्र पुराण स्मृति जीव माया ब्रह्म भी॥
चर अचर जहं लगि सृष्टि सब के चरण रज मस्तक धरूं।
साष्टाङ्ग दण्ड प्रणाम कर मांगौं अभय चरणन नु परूं॥१५॥
सोरठा—क्षमि अपराध महान जीवन मुक्ती दीजिये।
भेद बुद्धि तजि मान ब्रह्म रूप समचित धरौं॥१६॥

चौपाई

पुस्तक मांहि अशुद्धि होई। सज्जन समझि सुधारो सोई॥
वेशी कमी होय जहां भाई। देउ बनाय प्रफुल्लित जाई॥
अल्प बुद्धि कछु साधन नाहीं। शुभ लालसा अहै मन मांहीं॥
सेवक समझि कृपा करि दीजै। अवगुण सर्व ध्यान नहिं दीजै॥
क्षमा करौ अपराध हमारे। जान अजान होंय जो सारे॥
इतनेउ पर जो करै कोई शङ्का। मोउते अधमते जड़मतिरङ्का॥
दोहा—करी कृपा गुरुदेव ने, चरणोदक दियो प्याय॥
अमृत रस को पान करि, भव से दियो तराय।

चौपाई

श्री परमातम देव सुदर्शन। सो अपरोक्ष भयेउ गुरु परशन॥
ब्रह्म आत्मा पूर्ण जाना। निधिध्यासन कर के पहिचाना॥
अचल समाधि गुरु मोहि दीना। प्राप्त की प्राप्त जब कीना॥
सब से करूं विनय कर जोरी। कीजै क्षमा खोर बहु मोरी॥
ग्रन्थ पूरती अब कर दीजै। सर्व देव मिलि रक्षा कीजै॥
जब तक नही जानिये आतम। तब तक नहीं मिले परमातम॥
जल निधि वारि मेघ ले आई। बून्द बून्द निर्मल बरसाई॥
भूमि परि डाबर पहिचानी। जिमि जीव ही माया लिपटानी॥

पवन चलै निर्मल जब होई। माया मलिन दूर सब खोई ॥
जल को पवन जीव को ज्ञाना। ज्ञान भये सब कर्म नशाना ॥
मैं अपनी दिशि कीन निहोरा। ते निज ओर न लाउब भोरा ॥
सियाराम मय सब जग जानी। करूं प्रणाम जोर युगपानी ॥
दोहा—जो आतम को जानते, हैं परमातम रूप।
सोई जीवन मुक्त हैं, परें न ते भव कूप ॥१२॥

॥ इति प्रश्नोत्तरी ॥

छंद व दोहे वेदान्त विषय पर

श्लोक—सर्वं पूज्यं सदा पूर्णं ह्यखंडा नन्द विग्रहम्।
स्व प्रकाशं चिदानन्दं ह्यवधूतं नमाम्यहम् ॥ १ ॥
छंद—कूटस्थ हूं अद्वैत हूं मैं बोध हूं मैं नित्य हूं,
अक्षय तथा निस्संग आत्मा एक शाश्वत सत्य हूं।
नहिं देह हूं नहिं इन्द्रियां हूं स्वच्छ से भी स्वच्छतर,
ऐसी किया कर भावना निःशोक हो सुख से विचर ॥१॥
मैं देह हूं फांसी महा इस पास में जकड़ा गया,
चिरकाल तक फिरता रहा जन्मा किया फिर मर गया,
मैं बोध हूं ज्ञानास्त्र ले अज्ञान का दे काट सर।
स्वच्छन्द हो निर्द्वन्द्व हो आनन्द कर सुख से विचर ॥२॥
निष्क्रिय सदा निस्संग तू कर्ता नहीं भोक्ता नहीं,
निर्भय निरंजन है अचल आता नहीं जाता नहीं।
मत राग कर मत द्वेष कर चिंता रहित हो जा निडर,
आशा किसी की क्यों करे सतृप्त हो सुख से विचर ॥३॥

यह विश्व तुझ से प्राप्त है तू विश्व में भरपूर है,
तू वार है तू पार है तू पास है तू दूर है।
उत्तर तुही दक्षिण तु ही तू है इधर तू है उधर,
दे त्याग मन की क्षुद्रता निःशंक हो सुख से विचर ॥४॥
निरपेक्ष द्रष्टा सर्व का इस दृश्य से तू अन्य है,
अक्षुब्ध है चिन्मात्र है सुख सिन्धु पूर्ण अनन्य है।
छः उर्मियों से है रहित मरता नहीं तू है अमर,
ऐसी किया कर भावना निर्भय सदा सुख से विचर ॥५॥
आकार मिथ्या जान सब आकार विन तू है अचल।
जीवन मरण है कल्पना तू एक रस निर्मल अटल।
ज्यों जेवरी में सर्प त्यों अध्यस्त तुझ में चर अचर।
ऐसी किया कर भावना निश्चिंत हो सुख से विचर ॥६॥
दर्पण धरें जब सामने तब ग्राम उसमें भासता।
दर्पण हटा लेते जभी तब ग्राम होता लापता।
ज्यों ग्राम दर्पण माहिं तुझ में विश्व त्यों आता नज़र।
संसार को मत देख निज को देख तू सुख से विचर ॥७॥
आकाश घट के वाह्य है आकाश घट भीतर वसा।
सव विश्व में है पूर्ण तूही वाह्य भीतर एक सा।
श्रुति संत गुरु के वाक्य ये सच मान रे विश्वास कर।
भोला निकल जग जाल से, निर्बंध हो सुख से बिचर॥८॥

प्राज्ञवाणी

छंद—मैं हूं निरंजन शान्ति निर्मल वोध माया से परे,
हूं काल का भी काल मैं मन बुद्धि काया से परे।
मैं तत्व अपना भूल कर व्यामोह में था पड़ गया।

श्रुति संत गुरु ईश्वर कृपा अब मुक्त बंन्धन से भया ॥९॥

छंद—जैसे प्रकाशु देह में त्यों ही प्रकाश विश्व सब ।
हूं इसलिये में विश्व सब अथवा नहीं हूं विश्व अब ।
सशरीर सारे विश्व का है त्याग मैंने कर दिया ।
सब ठौर मैं ही दीखता हूं ब्रह्म केवल नित नया ॥१०॥
जैसे तरंगें झाग वुद वुद सिन्धु से नहीं भिन्न कुछ,
मुझ आत्म से उत्पन्न जग मुझ से नहीं है अन्य कुछ ।
ज्यों तंतुओं से भिन्न पट की है नहीं सत्ता कहीं,
मुझ आत्म से इस विश्व की त्यों भिन्न सत्ता है नहीं ॥११
ज्यों ईख के रस माहिं शक्कर व्याप्त होकर पूर्ण है ।
आनन्द घन मुझ आत्म से सब विश्व त्यों परिपूर्ण हैं ।
अज्ञान से ज्यों रज्जु अहि हो ज्ञान से हट जाय है ।
अज्ञान निज से जग बना निज ज्ञान से मिट जाय है ॥१२॥

छन्द—जब है प्रकाशक तत्व मम तो क्यों न होंहु प्रकाश में ।
जब विश्व भर को भासता तो आप भी हूं भास मैं ॥
ज्यों सीप में चांदी मृषा मरु भूमि में पानी यथा ।
अज्ञान से कल्पा हुआ यह विश्व मुझ में है तथा ॥१३॥
ज्यों मृतिका से घट बनें, फिर मृतिका में होय लय ।
उठती यथा जल से तरंगें होंय फिर जल में विलय ॥
कंकण कटक बनते कनक से, लय कनक में हो यथा ।
मुझसे निकलकर विश्व यह मुझ माहि लय होता तथा १४
होवै प्रलय इस विश्व का मुझ को न कुछ भी त्रास है ।
ब्रह्मादि सब का नाश हो मेरा न होता नाश है ॥
मैं सत्य हूं मैं ज्ञान हूं मैं ब्रह्म देव अनन्त हूं ।

कैसे भला हो भय मुझे निर्भय सदा निश्चिंत हूं ॥१५॥

छन्द—आश्चर्य है आश्चर्य है मैं देह वाला हूं यदपि ।
आता न जाता हूं कहीं भूमा अचल हूं मैं तदपि ॥
सुन प्राज्ञ वाणी चित दे निज रूप में अब जाग जा ।
भोला प्रमादी मत बनें भव जेल से उठ भाग जा ॥

जीवन मुक्ति का लक्षण

छन्द—नहिं राग करता भोग में नहिं दूर रहता भोग से ।
नहिं पास जाता योग के, नहिं दूर रहता योग से ॥
नहिं इन्द्रियां होती विकल नहिं रक्त है न विरक्त है ।
है तृप्त अपने आप में सो प्राज्ञ जीवन मुक्त है ॥१७॥
बैठे नहीं नहिं हो खड़ा नहिं आंख मीचे खोलता ।
जागे नहीं सोवे नहीं चुपका नहीं नहिं बोलता ।
चेष्टा सभी करता रहे फिर भी न चेष्टा युक्त है ॥
निस्संग कर्म अकर्म से सो प्राज्ञ जीवन मुक्त है ॥१८॥

छन्द—सुख दुख अरु शीतोष्ण में समचित रहता है सदा ।
क्या मित्र हो क्या शत्रु हो सम देखता है सर्वदा ॥
सब वासनाओं से रहित निज आत्म में अनुरक्त है ।
सब विश्व देखे ब्रह्ममय सो प्राज्ञ जीवन्मुक्त है ॥१९॥
सुनता हुआ या देखता छूता हुआ या सूंघता ।
लेता हुआ देता हुआ जगता हुआ या ऊंघता ॥
आता हुआ जाता हुआ निज आत्म में संतृप्त है ।
चेष्टा अचेष्टा से रहित सो प्राज्ञ जीवन्मुक्त है ॥२०॥
निंदा प्रशंसा से रहित सम सम्पदा सम आपदा ।
देता नहीं लेता नहीं समचित निर्भय सर्वदा ॥

जिसको विषम भासे नहीं सर्वत्र समता युक्त है।
मन श्रमन बालक सा चलन सो प्राज्ञ जीवन्मुक्त है ॥२१॥
कामिन उपस्थित देख कर नहिं क्षोभ मन में लाय है।
विकराल मृत्यु समीप में भी देख नहिं घबराय है ॥
विह्वल न जिसका हो हृदय अति धैर्य से संयुक्त है।
तल्लीन अपने आप में सो प्राज्ञ जीवन्मुक्त है ॥२२॥
छन्द—गोस्वान गज चाण्डाल ब्राह्मण वेदपाठी एक सम।
सर्वत्र समदर्शी सदा जिसको न कोई वेशकम ॥
सम आत्म सब में जान कर रहता सदा समचित्त है।
योगी वही ज्ञानी हुई सो प्राज्ञ जीवन्मुक्त है ॥२३॥
हिंसा कभी करता नहीं फसता दया में भी नहीं।
ऊंचा कभी नहिं शिर करे नहिं दीन भी होता कहीं ॥
विस्मय कभी पाता नहीं होता न संशय युक्त है।
जग मान्य भोला धन्य सोही प्राज्ञ जीवन्मुक्त है ॥२४॥
श्लोक–निर्मलम् निरहंकारं समलोष्टाश्म काञ्चनम्।
सम दुःख सुखं धीरंह्यवधूतं नमास्यहम् ॥२॥

॥ अथ गीतावली दोहे ॥

दोहा–महात्म—प्रारब्धी कर्मान को भोगे जीव अनन्त।
श्री गीता के पाठ तै पावै मुक्ति निरंत ॥१॥
दोहा—कुल धर्मन के नाशते, निःसंदेह यह होय।
सदा नरक में ते रहें, कहत ज्यों सब कोय ॥ १-४४
तजिकैं सब मन कामना, जो निस्प्रेही होय।
अहंकार ममता तजै, तामहिं शान्तिहि जोय ॥ २-७१
निष्ठा जो द्वै अंति की, पहिले कही बनाय।

सिद्धन को ज्ञानी भलो, कर्मनि कर्म बताय ॥ ३-३

कर्मफल न छोड़े सदा, तनक करै नहिं आस ।
ता कर्मन के करत ही, लगे न भव की फांस ॥ ४-२०

द्वेष तजै इच्छा तजै, सो संन्यासी जान ।
राग द्वेष सों जे रहित, ताही छूट्यो मान ॥ ५-३

सब को देखै आप सम, सुखी दुखी इक भाय ।
सो योगी सब से बडो, मों में रहै समाय ॥ ६-३२

ज्ञानी जो भक्ति हि करै, सो सब से अधिकाय ।
ज्ञानी को वल्लभजु हौं, ज्ञानी मोहि सुहाय ॥ ७-१७

दोहा—अक्षर जासों कहत हैं, वती राग जहां जात ।
ब्रह्मचर्य जो चाहते, तापद को कहु बात ॥ ८-११

मैं सब ठौर समान हूं, मेरे प्रति न द्रोह ।
मोकों सेवत भक्त जे, तिन सों मोको मोह ॥ ९-२९

मेरी दिव्य विभूति को, अंत न जान्यो जाय ।
यह तौ थोरो सो कह्यो, मो विभूति के भाय ॥ १०-४०

तोहि दिखायो रूप में, अति प्रसन्न चित होय ।
आदि अन्त सो तेज मय, देखिसकै नहिं कोय ॥ ११-४७

जो मों में मन राखिकें, सेवत सेवक भाय ।
वहु श्रद्धा सों जो भजत, सो सब से अधिकाय ॥ १२-२

क्षेत्र तथा अनुभव जु मैं, तो कों दयो बताय ।
इन को जानै जो भगत, लहैजु मोये भाय ॥ १३-१८

उदासीन बैठा रहे, सुख दुख चपल न होय ।
सब गुण कारज करत है, यों जानें जो लोय ॥ १४-२३

दोहा—पुरुषोत्तम मो नाम को जो जानै इहि भाय।
सो सब विधि मोकौं भजै सकल ज्ञान निधि पाय ॥१५।१९

दैवी संपद मुक्ति को बन्ध आसुरी नाम।
सो शास्त्र विधि छाड़िदें, नहीं लहें विश्राम ॥ १६–५

श्रद्धा सों नर तप करै सोई तीनों भांति।
फल इच्छा छाड़े करै सोई सात्विक कांति ॥ १७–१७

श्रद्धा युत दूषण विना, याहि सुनें जो कोय।
पुण्यवन्त लोकन लहै, मुक्ति जुता को होय ॥ १८–७१

इति गीतावली

———

ग़ज़ल

हो गया आनन्द दुनियां को रिझा कर क्या करूं।
दिल मुनव्वर है तो दीपक राग गा कर क्या करूं॥
चक्रवर्ती कर दिया गुरु ने यह ज़य्यद रमज़ है।
फिर भला महाराज जग से अब कहाके क्या करूं ॥१॥
सुन लिया गुरु से जो सुनना था न कुछ बाक़ी रहा।
सुन्न दिल सुन सान जीवों को सुना के क्या करूं ॥२॥
जल गया अज्ञान का अंबार अग्नि ज्ञान में।
खुद बुझी जाती जाती है अग्नि भी बुझा के क्या करूं ॥३॥
है परम पाक़ीज़ मेरा आत्मा शङ्का मिटी।
गोमती गङ्गा त्रिवेणी में भी न्हा के क्या करूं ॥४॥
मिल गया वल्लाह अल्लाह खैर सल्लाह अब हुई।
हो गया है पाक पल्ला पढ़ पढ़ा के क्या करूं ॥५॥
सर के बाहर भीतरे मौजूद है मसजूद पुर।

फिर भला सिजदे में अब सर को झुका के क्या करूं ॥६॥
हर्फ़ में लफ़्ज़ों में फ़िक़रे में कलब में है अयां ।
फिर वज़ीफ़े में भला अब बुड़बुड़ा के क्या करूं ॥७॥
रोम रोम में रमा है आत्मा मेरा सजन ।
खाक़ में भी रम रहा खाक़ रमा के क्या करूं ॥८॥
लाइला का अर्थ और जाना है इल्लिल्लाह का ।
मूंछ कटवा लिंग का चमड़ा कटा के क्या करूं ॥ ९ ॥
वेद के वाक्यों से आतम ब्रह्म को जाना है एक ।
फिर भला भारी जटा सर पर रखा के क्या करूं ॥१०॥
रंग और वेरंग सब ही अंग आतम जान कर ।
पा गया खुद रंग अब कपड़े रंगा कर क्या करूं ॥११॥
हर घड़ी ताज़े ही ताज़े शब्द अनहद के बजे ॥
फिर भला ढ़प ढ़ोल सारंगी बजा के क्या करूं ॥ १२ ॥
जिस जगह आना था आया हूं दया गुरु ने करी ।
अब बुलाते हो कहां काहे को आके क्या करूं ॥ १३ ॥
सब सजावट और बनावट का महल है आत्मा ।
फिर भला हड्डी व चमड़े को सज़ा के क्या करूं ॥ १४ ॥
अक़ल हो तो जान लो सुख हो न आतम् ज्ञान विन ।
मर गया कारूं भी धन दौलत कमा के क्या करूं ॥ १५ ॥
जिस्म होवेगा फना कुछ शक़ शुवा इस में नहीं ।
जिस्म से कुछ और हूं सीमाव खाके क्या करूं ॥ १६ ॥
जो मुक़द्दम था मुक़द्दमा तै हुआ दरवार से ।
सब अपीलें मिट गईं फिर लड़ लड़ा के क्या करूं ॥ १७ ॥
राह राहत जान कर गुरु से अजब राहत मिली ।

ऐन राहत ही हुआ किस को सता के क्या करूं ॥ १८ ॥
मिल गया मतलूव मौला से ही मेला हो गया ।
हुआ माला माल किस से मिल मिला के क्या करूं ॥ १६ ॥
नाचती है बुद्धि नखरे से क़लव कमरे में हूर ।
खाल से हड्डी मढ़ी गणिका नचाके क्या करूं ॥ २० ॥
तीर्थों का वेद ने तीरथ कहा है आत्मा ।
द्वारिका केदार वद्रीनाथ जाके क्या करूं ॥ २१ ॥
वृतियां मन की भी आतम् ब्रह्म में हैं मुस्त आर ।
महल मेरा आत्मा वृति पका के क्या करूं ॥ २२ ॥
रूप रस गन्धों व शब्द स्पर्श का आधार हूं ।
फिर मिठाई पुष्प जल चन्दन चढ़ा के क्या करूं ॥२३॥
जन्त्र तन्त्र मन्त्र वेद शास्त्र विद्या बीज हूं ।
मन्त्र जप तप स्तोत पटल गा के क्या करूं ॥२४॥
सर्व का आधार वेदों ने भी आत्म को कहा ।
बल्कि खुद ही सर्व फिर आसन लगा के क्या करूं ॥२५॥
बहुत पढ़ने पर न कुछ कृपा गुरु की शर्त है ।
फिर छऊ शास्त्र में भी माथा पचा के क्या करूं ॥२६॥
नारदादिक ने दया गुरु से ही जाना आत्मा ।
शास्त्र पढ़ मत पन्थ के गढ़ कोट ढ़ाके क्या करूं ॥२७॥
कपिल गौतम कण भुगादिक बुद्धि लड़ भिड़ मर गये ।
वहस में नहिं रहस जाना सिर खपा के क्या करूं ॥२८॥
आत्मा कूटस्थ अज़नित मुक्त ब्रह्म अखण्ड है ।
अचल निष्क्रय एक रस घण्टा हिला के क्या करूं ॥२९॥
फिर रहा दीखै है बुद्धि के ही फिरने से जगत ।

अटल आत्म जान फिर माला फिरा के क्या करूं ॥३०॥
हुआ नक़दा नक़द अब दीदार आत्म ब्रह्म का ।
कहें निर्भय अब समाधी भी लगा के क्या करूं ॥३१॥

भजन

(परम प्रिय पंडित रामचन्द्र हिंडोल निवासी कृत)

शरणागत दुःख हरण आप का कहत वेद बाना । टेक ।
हे दीनबन्धु जगदीश सकल सुर ईश अखिल दुःख भञ्जन । त्यारो वेद न पावें पार दुष्ट मद गञ्जन है । अतिशय मृदुल स्वभाव भक्ति परभाव ऋषि गाते हैं । जो जपें आप का नाम पार जाते हैं । प्रहलाद नाम उच्चारा, अस शरणागत वृत धारा, दुख दिया दैत्य ने भारा, पर नहिं हरिनाम बिसारा ॥ तौड़ ॥ जब हुए आप अधीर विकट भई पीर रूप नरसिंहका प्रगटाना ॥ १ । श० लेकर के कुटम समाज चले गजराज वारि पीने को । नहि संकट की कुछ खबर रंग भीने को ॥ किया सरवर में गवन ताप करि शमन सुखी मन कीन्हा । इतने में ग्राह ने आय चरण गहि लीन्हा ॥ करि कुंजर क्रोध अपारा । पद खेंचहि बारम्बारा ॥ सब गज कुल देय सहारा । पर तनक न होग उबारा ॥ ले चला ग्राह गहि चरण हुआ अब मरण किया तब नारायण ध्याना ॥२॥ शरणागत दुख हरण हे जन रक्षक । भगवान् सुनों कर कान भक्ति उर चन्दन । अब मेरे वश की नहीं काट दो फन्दन ॥ सुनकर के इतनी टेर करी नहिं देर गरुड़ असवारी । आये गजराज समीप भक्ति भय हारी । गज खेंचि पार पर डारा लै चक्र ग्राह को मारा । लखि ऐसा

चित्त तुम्हारा मैंने हूं लिया सहारा ।। तोड़ ।। नित जपूं आप का नाम जो है सुख धाम देहुं प्रभु ऐसा नित ज्ञाना ।।३।। शरणा गत० जब हारे पाण्डव नारि अति सुकुमार कपट जूये में। गिर गई द्रोपदी महाविपति कूये में ।। तब वृद्ध सभा के बीच दुशासन नीच चीर लगा खेंचन, तुझे नगिन करूंगा आज लखूंगा तेरा तन । तब दुखित नारि उच्चारी । मेरी सुनियो टेर मुरारी ।। इकली नहिं लाज हमारी । बिगरैगी नाथ तुम्हारी ।।तोड़।। जो नाथ विसारी आज तौ संत समाज होय भक्ती कर अपमाना ।।४।। शरणागत दुख हरण ।आ०। जब सुनी भक्ति पर भरी नयन भरि नीर कृपा करि चाहे होगये अखै शिर चीर दुःख निवटाये। खेंचत खल गयो हार न पायो पार बैठि गयो थल पर ।। धनि धनि हैं उन के भाग रहें हर वल पर ।।

जै जै कहि द्रुपदपुकारी जै कृपा सिंधु बनवारी । जैकृष्ण मुकन्द विहारी । नारायण भव भयहारी ।। तोड़ ।। कहें रामचन्द्र कर जोर शब्द हुआ घोर जयतिजय जय जय भगवाना ।।५ ।। शरणागत दुख हरण आपका कहत वेद वाना ।।

।। ॐ आरती श्री गुरुदेव परमात्म की ।।

जै निर्भय प्यारे प्रभु जै निर्भय प्यारे ।
भव सागर से तारे पूरण अवतारे ।।१।। जै निर्भय प्यारे०
सतचित आनन्द तुम हो अचल अटल भारे ।
अजर अमर निर्गुण हो कष्ट हरन हारे ।।२।। जै निर्भय०
नित्य मुक्त निर्बंधन असंग अविकारे ।
अलख निरंजन शिव हो व्यापक भय हारे ।।३।। जै निर्भय०
अखंड घट घट वासी कहत वेद चारे ।

जग में तुम तुम में जग फिर जग से न्यारे ॥४॥ जै निर्भय०
नित्य तृप्त कृत कृत हो राग द्वेष जारे ।
शरणागत पतितन को ब्रह्म लोक डारे ॥५॥ जै निर्भय०
अधिष्ठान हो सब के तुम अपरम्पारे ।
सुख स्वरूप परकाशक पापी खल तारे ॥६॥ जै० निर्भय०
स्वतन्त्र हो अविनाशी जन्म मरण टारे ।
भक्ति मुक्ति के कारण बहुत रूप धारे ॥७॥ जै निर्भय०
जिज्ञासू भक्तन के काम क्रोध मारे ।
लोभ मोह मद मत्सर छल बल सब गारे ॥८॥ जै निर्भय०
भुक्ति मुक्ति जो चाहत ध्यान धरें सारे ।
दृढ़ विश्वास कियो जिन सर्व क्लेश झारे ॥९॥ जै निर्भय०
आवागवन भयानक हैं भुजंग कारे ।
नाव भंवर में घूमें कर खेवा पारे ॥ १० ॥ जै निर्भय०
महा निशा में आरति निश्चय कर गारे ।
परमानन्द निरंतर निर्भय पद पारे ॥
जै निर्भय प्यारे प्रभु जै निर्भय प्यारे ।
भवसागर से तारो पूर्ण अवतारे ॥

॥ हरि ओम् तत्सत ॥

दोहा—सम्वत् शशि, नव ग्रहन पर अष्ट नवम् लिख दोय ।
कृष्ण पक्ष मघ मास शुभ, दोज सोम सुख होय ॥ १ ॥
कियो समापति ग्रन्थ को, आनन्द मंगल रूप ।
पढ़े याहि चित देय कर पावै शान्ति अनूप ॥ २ ॥
हस्ताक्षर स्वामी शान्तानन्द ॐ शान्ति ३ ॥

॥ इति शुभम् ॥